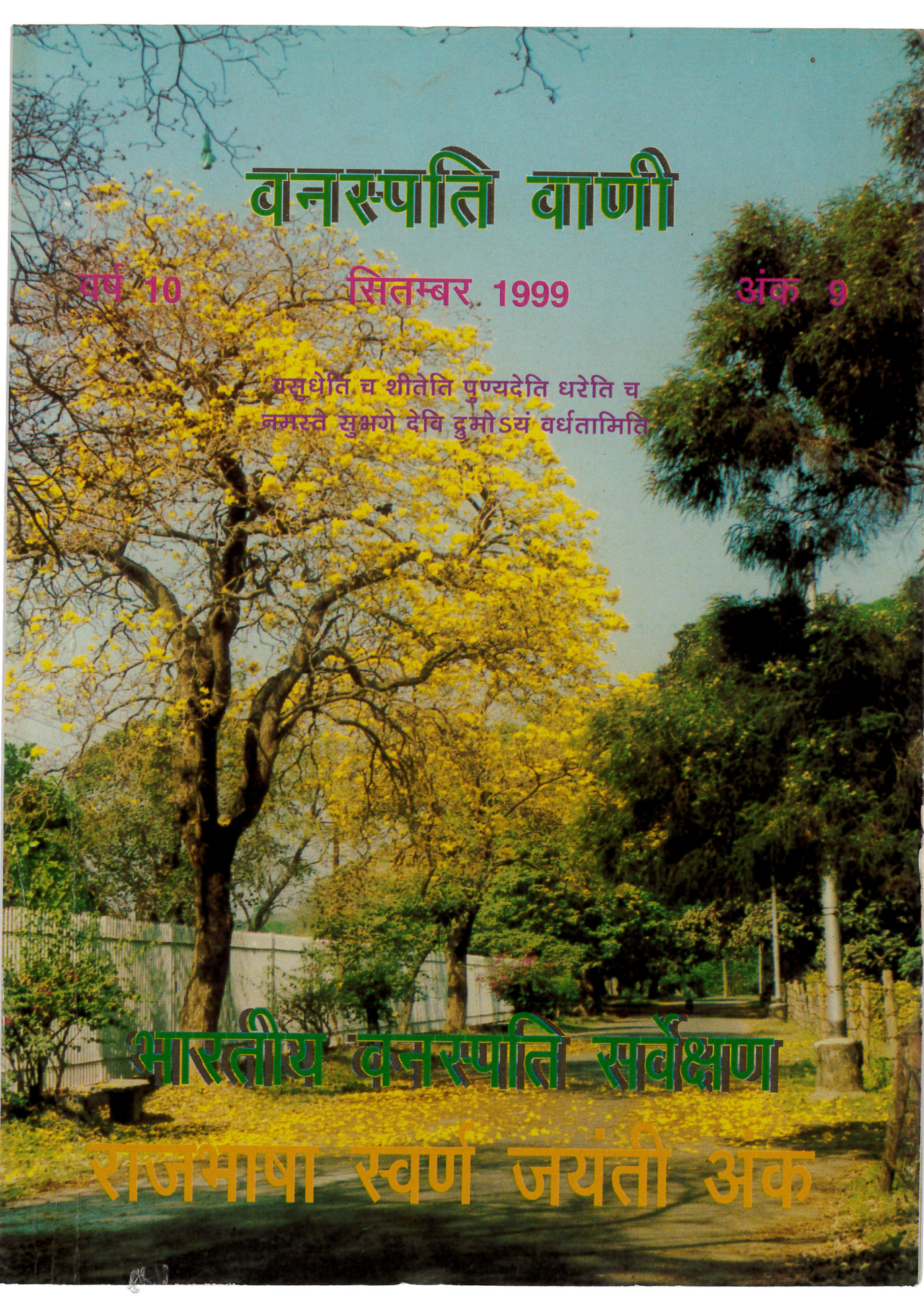

वनस्पति वाणी

वर्ष 10 सितम्बर 1999 अंक 9

वसुधेति च शीतेति पुण्यदेति धरेति च
नमस्ते सुभगे देवि द्रुमोऽयं वर्धतामिति

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण

राजभाषा स्वर्ण जयंती अंक

हिन्दी कार्यशाला – भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पूना (सौजन्य : एन० पी० सिंह)

विश्व पर्यावरण दिवस के अवसर पर स्कूली बच्चों द्वारा
भारतीय वनस्पति उद्यान, हावड़ा में वृक्षारोपण (सौजन्य : एल० के० बनर्जी)

वनस्पति वाणी

वर्ष 10 सितम्बर 1999 अंक 9

वसुधेति च शीतेति पुण्यदेति धरेति च
नमस्ते सुभगे देवि द्रुमोऽयं वर्धतामिति

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण
BOTANICAL SURVEY OF INDIA

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण

© इस प्रकाशन का कोई अंश निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के लिखित पूर्वानुमति के बिना पुनप्रर्वार्तत रिट्रिवल पद्धति से भण्डारण या इलेक्ट्रानिक, मेकेनिकल फोटोकापी, रिकार्डिंग या अन्य किसी तरीके से ट्रांसमिट नहीं किया जा सकता है।

डा० नेत्रपाल सिंह	:	संरक्षक
डा० विश्वनाथ मुद्गल	:	दिग्दर्शक
डा० हर्ष चौधरी	:	सम्पादक
नवीन चौधरी	:	सहायक सम्पादक

वनस्पति वाणी में प्रकाशित रचनाओं की मौलिकता प्रामाणिकता एवं व्यक्त विचारों के लिए लेखक उत्तरदायी है।

इस अंक के प्रूफ संशोधन मुद्रण क्रम में हिन्दी एवं प्रकाशन अनुभाग के सभी कर्मचारियों ने सक्रिय सहयोग प्रदान किए हैं।

मुखपृष्ठ का चित्र : **भारतीय वनस्पति उद्यान, हावड़ा का एक दृश्य**
(चित्रः हर्ष चौधरी)

पर्यावरण एवं वन मंत्रालय द्वारा राजभाषा स्वर्ण जयन्ती वर्ष के लिए प्रस्तावित कार्यक्रम को निष्ठापूर्वक अंगीकार करते हुए ''वनस्पति वाणी'' का यह अंक आपके सामने है। वनस्पति वाणी वैज्ञानिक कामकाज में राजभाषा को प्रतिष्ठित करने का विनम्र प्रयास है।

प्रस्तुत अंक के विमोचन के साथ भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण में राजभाषा स्वर्ण जयन्ती वर्ष का शुभारंभ हो रहा है। निर्धारित कार्यक्रम के अनुरूप विभिन्न आयोजन होंगे।

सम्पादन की प्रक्रिया में बहुमूल्य सहयोग एवं सुझावों के लिए ''वनस्पति वाणी'' डा० विश्वनाथ मुद्गल, अपर निदेशक का आभारी है।

विषय सूची

कुछ पौधों के अपरिचित उपयोग	:	सुधांशु कुमार जैन एवं राम लखन सिंह सिकखार	1
कल्पवृक्ष (परिजात) एडनसोनिया डिजिटेटा लिन. एक विवेचना	:	रामदास दीक्षित एवं रमेश कुमार	9
अभिसूचक अथवा सूचक पादप जातियाँ	:	हर्ष चौधरी	12
रूद्राक्ष	:	श्रीकृष्ण मूर्ति	16
कल्पवृक्ष	:	आर सी श्रीवास्तव एवं ए ए अन्सारी	22
आर्किड	:	पी के सरकार	28
प्रोटिन व विटामिनों का अक्षय स्त्रोत स्पाइरूलिना	:	एस एल गुप्त	29
चन्दन – एक पावन बहूपयोगी वनस्पति	:	सुनील कुमार श्रीवास्तव रामदास दीक्षित एवं बी के सिन्हा	31
वानस्पतिक उद्यान : पौध संरक्षण में सहायक महत्वपूर्ण कारक	:	नीरज श्रीवास्तव एवं पी एस एन राव	34
स्कैनिंग इलेक्ट्रान माइक्रोस्कोप (सेम) द्वारा पौधों की पहचान	:	देवयानी बसु	36
गोखरू (कॉर्न) के देशी उपचार में सहायक वनस्पतियाँ	:	मार्सेल तिग्गा एवं नीरज श्रीवास्तव	37
बोरहाविया डिफ्यूजा – पुनर्नवा	:	सुख सागर	39
पारम्परिक औषधि वनस्पति ''मेंहदी''	:	विपिन कुमार सिन्हा एवं सुनील कुमार श्रीवास्तव	41
अण्डमान और निकोबार की वनस्पति	:	पार्थ बसु एवं वसुंधरा पिल्लई	43
दैनन्दिन में पर्यावरण संरक्षण की भावना	:	नवीन चौधरी	45
यह पर्यावरण हमारा हो	:	भोलानाथ	47

कुछ पौधों के अपरिचित उपयोग

सुधांशु कुमार जैन एवं राम लखन सिंह सिकखार लोक जैवविज्ञान संस्थान,
द्वारा : राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान, संस्थान, लखनऊ

संसार के समस्त देश अब इस बात को मानते हैं कि जंगलों मे निवास करने वाली जनजातियों द्वारा सदियों से संजोकर रखे गये पेड़-पौधों से संबंधित उनके निजी ज्ञान तथा अनुभव का उपयोग देश के विकास में भी हो सकता है। हर देश या क्षेत्र की जनजातियों की अपनी अलग-अलग पहचान, रीति-रिवाज, सभ्यता तथा संस्कृति होती है, एवं इनके आसपास उगने वाले पेड़ पौधों के उपयोग करने के तरीके भी भिन्न-भिन्न होते हैं।

विगत कुछ वर्षों में सुदूर क्षेत्रों तथा विभिन्न जन जातियों की लोक वनस्पति के तुलनात्मक अध्ययन के महत्व को समझा गया है।

हमारी संस्था के वैज्ञानिकों ने पिछले पाँच वर्ष में भारत तथा दक्षिण अमेरिका की लोक वनस्पति का तुलनात्मक अध्ययन किया और पाया कि लगभग 600 पौधे ऐसे है, जो दोनों क्षेत्रों में पाये जाते हैं। इनमें से लगभग 300 पौधों को दक्षिण अमेरिका की जनजातियाँ विभिन्न बीमारियों के उपचार में प्रयोग करती हैं। इन उपयोगों की लोक वनस्पति एवं औषधीय पौधों पर उपलब्ध सुपरिचित भारतीय साहित्य से तुलना करने पर यह पाया गया कि कुछ पौधो के उपयोग दोनों क्षेत्रों में समान हैं, तथा कुछ पौधों के उपयोग दक्षिण अमेरिका में तो ज्ञात हैं लेकिन भारत में ज्ञात प्रतीत नहीं होते, अर्थात, ये भारत में रोगोपचार हेतु नये उपयोगी स्रोत हो सकते हैं।

प्रस्तुत लेख में कुछ पौधों के ऐसे उपयोग दिये हैं जिन्हें दक्षिण अमेरिका की जनजातियाँ तो प्रयोग करती हैं परन्तु भारत की जनजातियाँ नहीं करती प्रतीत होतीं। इन उपयोगों पर भारत में शोध करने की अवश्यकता है। ये उपयोग हमने दक्षिण अमेरिका की लोक वनस्पति पर प्रकाशित कुछ साहित्य, जैसे अमेजोनियन एथनोबोटेनिकल डिक्शनरी (डयूक एवं वास्क्वेज, 1994) दि हीलिंग फारेस्ट (शुल्टिस एवं राफ्फौक, 1990), व्हेयर दि गोड्स रेन (शुल्टेस, 1988), फुट प्रिंट्स ऑफ दि फॅारेस्ट (बाली, 1993), फ्लांटास डानिन्हास डो ब्राजील (लोरेन्जी, 1991), एवं अन्य प्रकाशित लेखों से लिये हैं।

पौधों को उनके वैज्ञानिक नाम से देवनागरी में वर्णक्रमानुसार दिया गया है। साथ ही इन पौधों के कुछ हिन्दी भाषी प्रदेशों में प्रचलित नाम दिये हैं। अन्त में पौधों के उपयोग दिये गये हैं।

1 **आजेराटुम कोनीजोइडेस** (Ageratum conyzoides L.)
(कुल आस्टेरासिए) (Family-Asteraceae)
भारतीय नाम : माकड़मारी, उचुंती

यह सम्पूर्ण भारत में पाया जाता है।

उपयोग :

दक्षिण अमेरिकी जनजाति के लोग शीघ्र प्रसव हेतु, पत्तियाँ गर्भवती स्त्री के पेट पर रखते हैं।

2 **अमारांथुस स्पीनोसुस** (Amaranthus spinosus L.)

(कुल - अमारांथासिए) (Family - Amaranthaceae)

भारतीय नाम : तंडुलीय, कँाटेवाली चौलाई, कँाटा नोट्या, कँाटे मठ, कांटानू-डंट

यह सम्पूर्ण भारत में पाया जाता है।

उपयोग :

शाखाओं का काढाजोड़ों के दर्द में उपयोगी बताया जाता है

3 **आर्जेमोने मेक्सीकाना** (Argemone mexicana L.)

(कुल पापावेरासिए) (Family - Papaveraciae)

भारतीय नाम : ब्रहमदंडी, सत्यानासी, भरबंड, स्याल कँाटा, पीली कटेरी

यह सम्पूर्ण भारत में पाया जाता है।

उपयोग :

जड़ों की चाय स्त्रियो में गर्भ धारण नियमित करने हेतु दी जाती है।

4 **ओर्टेमीसिआ आबसीथिउम** (Artemisia absinthium L.)

(कुल आस्टिरासिए) (Family - Asteraceae)

भारतीय नाम : असफंतीन, विलायती असफंतीन

यह काश्मीर में पाया जाता है।

उपयोग :

पत्तियों एवं तने का काढ़ा स्त्रियों में गर्भधारण नियमित करने हेतु दिया जाता है।

5 **आर्टेमीसिआ नीलागिरीका** (Artemisia nilagirica (Cl.) Pamp)

(कुल अस्टिरासिए) (Family - Asteraceae)

भारतीय नाम : नागदमनी, नागदोना, काली नगद, समरी, ढोरदवणा

यह पहाड़ी क्षेत्रों में पाया जाता है।

उपयोग :

क्वाथ पीलिया रोग में प्रयोग किया जाता है।

6 **बिक्सा ओरेल्लाना** (Bixa orellana L.)

(कुल बिक्सासिए) (Family - Bixaceae)

भारतीय नाम : लटकन, विलायती हल्दी, सिंदूरी, सेन्द्री

भारत में यह उद्यानों में उगाया जाता है।

उपयोग :

कोलम्बिया में बीजों की लेई कामोद्दीपक मानी जाती है। कयापो जनजाति की स्त्रियाँ सुगम प्रसव हेतु पत्तियाँ गर्भवती स्त्री के पेट पर मलती हैं।

7 **कारीका पापाया** (Carica papaya L.)

(कुल कारीकासिए) (Family - Caricaceae)

भारतीय नाम : पपीता, अरिंड खरबूजा, पपई। यह सम्पूर्ण भारत में उगाया जाता है।

उपयोग :

हरे पपीता के दूध (Latex) की कुछ बूँदें पेचिश के उपचार में दी जाती हैं। दूध की कुछ बूँदें गर्म पानी के साथ दमा तथा मधुमेह के उपचार में दी जाती हैं।

8 **कास्सिआ ओक्सीडेंटालिस** (Cassia occidentalis L.)

(कुल फाबासिए) (Family - Febaceae)

भारतीय नाम : कासमर्द, कसौंदी, कलककशुंडा, चकुंडा

यह सम्पूर्ण भारत मे पाया जाता है।

उपयोग :

जड़, पत्तियाँ, फूल तथा बीज प्रबल गर्भपातक माने जाते हैं। जड़ का काढ़ा स्त्रियों में गर्भधारण नियमित करने हेतु भी दिया जाता है।

9 **कास्सिआ टोरा** (Cassia tora L.)

(कुल फाबासिए) (Family - Fabaceae)

भारतीय नाम : दद्रुमारि, चकोंडा, पनेवर, पंवार, कोवारियो टाकला

यह एक वर्षीय पौधा है। फूल पीले तथा फलियाँ लम्बी एवं गोल होती है। यह समस्त भारत में पाया जाता है।

उपयोग :

पत्तियों को मसलकर रस निकालकर पशुओं को खिलाने से किलनी (टिक) दूर भाग जाती हैं।

10 **सेईबा पेंटांड्रा** (Ceiba pentandra (L.) Gaertn)

(कुल बोम्बाकासिए) (Family - Bombacaceae)

भारतीय नाम : श्वेत शाल्मली, सफेद सेमल, हत्तियान, शाल्मली, पंढ़ारी

भारत में यह सड़कों के किनारे उगाया जाता है।

उपयोग :

छाल का क्वाथ पशुओं को प्रसव के बाद नाल (जरायु) निकालने हेतु दिया जाता है।

11 **चेनोपोडिउम मुराले** (Chenopodium murale L.)

(कुल चेनोपोडिआसिए) (Family - Chenopodiaceae)

भारतीय नाम : खरतुआ, बाहू, कुरूंड

यह भारत के अनेक क्षेत्रो मे पाया जाता है।

उपयोग :

संक्रमित त्वचा रोगों को साफ करने हेतु प्रयोग किया जाता है।

12 **सीद्रुस रेटीकुलाटा** (Citrus reticulata)

(कुल रूटासिए) (Family - Rutaceae)

भारतीय नाम : संतरा, नारंगी

भारत में इसे अनेक प्रान्तो में उगाया जाता है।

उपयोग :

फल के छिलकों को पानी में उबालकर ठण्डा करते हैं। एक खुराक प्रत्यिदिन मधुमेह के उपचार में दी जाती है।

13 **क्रोटालारिआ रेटूसा** (Crotalaria retusa L.)

(कुल फाबासिए) (Family - Fabaceae)

भारतीय नाम : शणरधन्टिका, घुनघुनियाँ, बिल-झुनझुन

भारत में यह स्वतः उगता है तथा रेशों के लिये उगाया भी जाता है।

उपयोग :

क्रिओल जनजाति के लोग पत्तियों तथा फूलों के काढ़े को जुकाम में प्रयोग करते हैं। वायापी जनजाति इसके ताजे बीजों को बिच्छू काटने पर दर्द निवारक के रूप में खाती है।

14 **सीम्बोपोगोन सीट्राटुस** (Cymbopogon citratus Stapf)

(कुल पोआसिए) (Family - Poaceae)

भारतीय नाम : कट्तृण, गंधतृण, अग्निघास, गंधवेन

भारत में इसे बगीचों में उगाया जाता है।

उपयोग :

पौधे का काढ़ा गर्भनिरोधक माना जाता है।

15 **एलेउसीने इंडिका** (Eleusine indica (L.) Gaertn)

(कुल पोआसिए) (Family - Poaceae)

भारतीय नाम : मडला, महार नयनी, नांदिया

भारत में यह घास अनेक प्रान्तो में पाई जाती है।

उपयोग :

जड़ एवं पत्तियों का क्बाथ अतिसार के उपचार में दिया जाता है।

16 **गूआजूमा उल्मीफोलिआ** (Guajuma ulmifflia Lam.)

(कुल स्टेरकुलिआसिए) (Family - Sterculiaceae)

भारतीय नाम : निपालतुंड, रूद्राक्ष

भारत में विशेषतः दक्षिण भारत में उद्यानों तथा सड़कों के किनारे उगाया जाता है।

उपयोग :

छाल का काढ़ा दमा रोग में लाभदायक माना जाता है। यह मलेरिया तथा कुष्ठरोग में भी प्रयोग होता है।

17 **जाकारांडा आकूटीफोलिआ** (Jacaranda acutifolia Humb. ex. Bonpl).

(कुल बिगनोनिआसिए) (Family - Bignoniaceae)

भारतीय नाम : नीलीगुल्मोहर, जकरंडा

भारत में इसे उद्यानों तथा नगरो में शोभा के लिये उगाया जाता है।

उपयोग :

छाल का काढा स्त्रियों में गर्भधारण नियमित करने हेतु दिया जाता है।

18 **जाट्रोफा कुर्कास** (Jatropha curcas L.)

(कुल एउफोर्बिआसिए) (Family - Euphorbiaceae)

भारतीय नाम : बागमेरण्ड, सफेद एरंड,

मुगलई एरंड, जमाल गोटा, रतनजोत

यह समस्त भारत में पाया जाता है।

उपयोग :

पत्तियाँ पीलिया रोग में दी जाती हैं।

19 **लांटाना कामारा** (Lantana Camara L.)
(कुल वेर्बेनासिए) (Family - Verbenaceae)
भारतीय नाम : घनेरी, टटेनी, पापड़दानी

यह सम्पूर्ण भारत में पाया जाता है।

उपयोग :

फुलों को सुखाकर 'मरूआ' (माजोराना होर्टेसिस) की पत्तियों के साथ चूर्ण वनाकर नासिका सम्बन्धी रोग तथा दिमागी तनाव दूर करने हेतु प्रयोग करते हैं।

एक्यूमा जनजाति के लोग पत्तियों को उबालकर छोटी माता तथा चेचक रोग की खुजली शान्त करने के लिए उपयोग करते हैं। उनका यह भी मानता है कि पत्तियों की चाय पीने से चेपक के त्वचा पर दाग नहीं पड़ते हैं।

20 **लूफ्फा आकूटांगुला** (Luffa acutangula (L.) Roxb)
(कुल कुकुराबिटासिए) (Family - Cucurbitaceae)
भारतीय नाम : झीगांतोरी, तोरई

यह समस्त भारत में उगाया जाता है।

उपयोग :

कच्चे फल का मुर्गियों के कुछ रोगों में प्रयोग होता है।

21 **मालाक्र कापीटाटा** (Malachra capitata L.)
(कुल मालवासिए) (Family - Malvaceae)
भारतीय नाम : रनभिण्डी, बनभिण्डी, विलायती भेंडी

यह सम्पूर्ण भारत में पाया जाता है।

उपयोग :

तिकूना जनजाति पत्तियों के काढ़े को जुकाम तथा पेट दर्द में प्रयोग करती हैं।

22 **मानीहोट एस्कूलेंटा** (Manihot esculenta Crantj)
(कुल एउफोर्बिआसिए) (Family - Euphorbriaceae)
भारतीय नाम : सीमल आलू टेपिमोका

भारत में इसे खाद्य कंदों के लिये उगाया जाता है।

उपयोग :

विटोटी जनजाति के अनुसार पौधे से विषेला रस निकालकर इसके पानी का प्रयोग मछली मारने हेतु किया जाता है।

तिकूना जनजाति पिसे हुए कंद से रस निचोड़कर तथा इसमें समान मात्रा में पानी मिलाकर एक प्याला अतिसार के उपचार में देते हैं।

वायापी जनजाति की स्त्रियों का विश्वास है कि बाँझ-पन दूर करने के लिये इसकी जड़ के रस से स्नान करना उपयोगी है।

23 **मेंथा पीपेरिटा** (Mentha piperita L.)

(कुल लमिआसिए) (Family - Lameaceae)

भारतीय नाम : पिपर मिंट, विलायती पुदीना

भारत में इसे उगाया जाता है।

उपयोग :

पत्तियों के चूर्ण को शहद के साथ मिलाकर यकृत विकारों में देते हैं। बच्यों को आधी चम्मच तथा वयस्कों को एक चम्मच, दिन में तीन बार, सात दिन तक देते हैं।

तीन, चार पत्तियों को एक लहसुन की कली के साथ पीसकर व गर्म पानी मिलाकर ठण्डा करते हैं तथा छानकर बच्चों को पेट के कीड़े मारने हेतु देते हैं।

24 **मीमोसा पूडिका** (Memosa pudica L.)

(कुल कावसिए) (Family - Fabaceae)

भारतीय नाम : लाजवंती, छूईमूई, लजालू

यह सम्पूर्ण भारत में मिलता है।

उपयोग :

पालीकुर जनजाति के लोग इसके तथा 'मीठीपत्ती' (स्कोपारिआ डुल्सिस) के पौधों को मिलाकर काढ़ा बनाते हैं। उनका मानना है कि इस काढे से नहलाने से मनुष्य का चिड़ाचिड़ापन दूर हो जाता है।

25 **पार्थेनीउम हीस्टेरोफोरूस** (Parthenium hysterophorus L.)

(कुल आस्टेरासिए) (Family - Asteraceae)

भारतीय नाम : गाजर घास कांग्रेस घास

यह भारत के समस्त प्रान्तों में तेजी से फैल रहा है।

उपयोग :

पौधे की शारवाओं, पत्तों एवं पुष्पों को सर्पदंश में प्रयोग किया जाता है।

26 **फील्लांथुस ऊरीनारिआ** (Phyllanthus urinaria L.)

(कुल एउफोर्बिआसिए) (Family - Euphorbiaceae)

भारतीय नाम : लाल भूंई अंवला, हजारमणि

यह समस्त भारत में पाया जाता है।

उपयोग :

ब्राजील के रिओक्सी क्षेत्र की जनजातियाँ, बालों का झड़ना रोकने हेतु तनों को पानी में उबालकर, उस पानी से सिर को धोती हैं।

27 **पोर्टुलाका पीलोसा** (Portulaca pilosa L.)

(कुल पोर्टुलाकासिए) (Family - Portulacaceae)

भारतीय नाम : पासलकीर, लानीयां जंगली गाजर

यह रेतीले या पथरीले स्थान पर होता है।

उपयोग :

पौधे के रस को कुछ अन्य पौधों के साथ मिलाकर सर पर मालिस करते हैं। यह बालों के लिये भी लाभ दायक होता है।

28 **राउवोल्फिआ टेट्राफील्ला** (Rauvolfia tetraphylla L.)

(कुल आपोसीनासिए) (Family - Apocynaceae)

भारतीय नाम : बड़ा चन्द्रिका

यह सम्पूर्ण भारत में पाया जाता है।

उपयोग :

पत्तियों का काढ़ा दाँत दर्द में प्रयोग किया जाता है।

29 **रूएल्लिआ टुबेरोसा** (Ruellia tuberosa L.)

(कुल आकांथासिए) (Family - Acanthaceae)

भारतीय नाम : ओते सिरकाबां

भारत में यह उद्यानों में शोभा के लिए उगाया जाता है।

उपयोग :

जड़ तथा तना का काढ़ा मूत्र सम्बन्धी विकारों में दिया जाता है। पत्तियों का काढ़ा गर्भवती स्त्रियों द्वारा शरीर में ठण्डक लाने हेतु दिया जाता है।

30 **स्मीलाक्स ओवालीफोलिआ** (Smilax ovalifolia Roxb.)

(कुल स्मीलाकासिए) (Family - Smilacaceae)

भारतीय नाम : चोब-चीनी, कुमारिका, घोंटवेल

यह सम्पूर्ण भारत के प्रायः मैदानी भागों में पाया जाता है।

उपयोग :

कंद को दो तीन घन्टे पानी में उबालकर इस काढे को ठण्डा करके रक्त शोधक के रूप में प्रयोग करते हैं।

31 **स्पोरीबोलुस ईंडिकुस** (Sporobolus indicus (L.) R.Br.)

(कुल पोआसिए) (Family - Poaceae)

भारतीय नाम : सिरिया का दाना, ताण्डलेन, बेना जोनी

यह घास भारत के शुष्क मैदानों में पाई जाती है।

उपयोग :

समूचे पौधे के काढ़े को स्त्रियों में गर्भधारण नियमित करने हेतु दिया जाता है।

समूचे पौधे का क्वथ बनाकर प्रसव के बाद स्त्रियों को 5 दिन तक नहलाया जाता है।

32 **स्टाचीटार्फेटा जामाइसेंसिस** (Stachytarpheta jamaicensis vahl)

(कुल बेर्बेनासिए) (Family - Verbenaceae)

भारतीय नाम : कर्करयार्थरानी

उपयोग :

जड़ का काढ़ा मलेरिया तथा यकृत विकारो में प्रयोग किया जाता है। काढ़ा बनाने के लिए तीन पौधों को तीन प्याला पानी में एक घन्टे तक उबालते हैं। शाखाओं तथा पत्तियों को पानी में भिगोकर, निचोड़कर एक गिलास अर्क प्रतिदिन तीन महीने तक मधुमेह में पीते हैं।

33 **टाजेटेस एरेक्टा** (Tagetes erecta L.)

(कुल आस्टेरासिए) (Family - Asteraceae)

भारतीय नाम : स्थूलपुष्प, गेंदा, गुल्तेरा, लाल मुरगा गुलझारो

भारत में इसे घरों एवं बगीचो में शोभा के लिए उगाया जाता है।

उपयोग :

पत्तियों तथा फूलों को सिरदर्द में प्रयोग करते हैं। नई पत्तियों के काढ़े से बुखार में स्नान करते हैं।

34 **ऊरेना लोबाटा** (Urena lobata L.)

(कुल मालबासिए) (Family - Malvaceae)

भारतीय नाम : बचीता, लैपेटुआ, पिथिया, बन ओखरा बनमेंडी

उपयोग :

पौधे का काढ़ा पीलिया रोग में दिया जाता है।

पौधों के ऊपर दिये हुए उपयोग भारत में शोध का अच्छा विषय हो सकते हैं। रसायन शास्त्र तथा भेषजज्ञान आदि के शोधकर्ता इन पर कार्य करें तो उपयोगी होगा।

'' प्रकृति के भंडार सबकी अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये पर्याप्त हैं, किन्तु चंद लोगों के लालच को तृप्त करने के लिये बहुत थोड़े हैं।''

– ''महात्मा गाँधी''

कल्पवृक्ष (पारिजात), एडनसोनिया डिजिटेटा लिन० - एक विवेचना

राम दास दीक्षित एवं रमेश कुमार
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

इलाहाबाद के दैनिक संस्करण ''अमर उजाला'' में ''सुल्तानपुर'' में ''परिजात वृक्ष'' का पाया जाना जो मनुष्य की मनोवांछित इच्छाओं की पूर्ति करता है, के प्रकाशन के कारण उत्सुकता जागृत हुई ओर एक दिन ''परिजात'' देखने सुल्तानपुर गये जो वहां के 'जिला उद्योग केन्द्र परिसर' में स्थित है। देखते ही समझ में आ गया कि यह विशालकाय दीर्घजीवी, अद्‌भुत वृक्ष जिसे अंग्रेजी में बाओबाब तथा लेटिन में **एडनसोनिया डिजिटेटा** लिन० के नाम से जाता है। यह बाम्बेकेसी कुल का है। यह मूलतः दक्षिणी अफ्रीका के सेनेगल प्रदेश का वृक्ष है। भारत में लोग इसे हिन्दी में ''परिजात'' एवं ''कल्पवृक्ष'' के नाम से जानते हैं।

यहाँ के लोगों की धारणा यह है कि इसे स्वर्ग - लोक से भगवान श्री कृष्ण जी लाये थे और इसकी उम्र 1500 से 2000 वर्ष आंकते हैं। सोमवार के दिन यहां पर हिन्दू-मुसलमान, जिनमें स्त्रियों की संख्या अधिक रहती है, विशेष पूजा अर्चना करते हैं। लोगों की धारणा है कि यहां सबकी मनोकामना की पूर्ति होती है। वृक्ष के चारो ओर चबूतरा बना दिया गया है तथा एक शिवलिंग भी स्थापित है जो लोगों ने वताया कि यहीं से मिला है तथा वहीं के एक शिक्षक ने इसकी महत्ता में पद्‌माकर की कविता सुनाईः ''पादपों में पारिजात, पर्वतों में हिमवान,

नदियों में जाह्नवी, मनोहरता की खान हैं।''

'मन्दार' पारिजात एवं कोविदार - इन तीन नामों से चर्चित यह वृक्ष समुद्र मंथन के समय निकले चौदह रत्नों में से एक माना जाता है जो उस समय देवराज इन्द्र को दिया गया था।

श्रीमद भागवन एवं हरिवंश पुराण के अनुसार भगवान श्री कृष्ण ने इन्द्र को घनघोर युद्ध में परास्त कर पारिजात वृक्ष को प्राप्त कर द्वारिकापुरी मे रानी सत्यभामा के भवन के प्रागंण में स्थापित किया। जिससे वहां की सारी प्रजा प्रसन्न हो जाती है एवं पारिजात का दर्शन कर मनोवांछित फल प्राप्त करती हैं।

इसी प्रकार ''तूबा'' नाम से इस वृक्ष का उल्लेख इस्लामी धार्मिक साहित्य में भी मिलता है जो ''सदा अदन'' (मुसलमानों के स्वर्ग का उपवन) में फलता - फूलता है। इस वृक्ष को हिन्दू - मुसलमान दोनों ही 'कल्प वृक्ष' मानकर अपनी मनोकामनाओं की पूर्ति करते हैं।

यह वृक्ष अपने विशालकाय आकार, दीर्घजीवी एवं पूजनीय होने के कारण भारत में जहां - जहां पर भी पाया जाता है आकर्षण का केन्द्र बन गया है। इलाहाबाद में झूंसी में गंगा तट पर इसका एक बड़ा प्राचीन वृक्ष हैं, जो ''कल्प वृक्ष'' के नाम से ज्ञात है। इलाहाबाद में ही दो वृक्ष कम्पनी बाग में भी है जो ज्यादा पुराने नहीं है। बाराबंकी में भी इसका एक पुराना वृक्ष है जिसके पास साधु रहते हैं यहाँ मेला लगता है। यहाँ इसे ''पारिजात'' एवं ''कल्प वृक्ष'' के नाम से जाता है। अजमेर से व्यावर के रास्ते पर मांगलियावास स्थान पर इसके दो वृक्ष ''राजा - रानी'' के नाम से विख्यात है जहां सावन माह में मेला लगता है तथा कल्प वृक्ष के नाम से पूजा जाता है और लोग अपनी मनोकामना पूर्ति के लिये इसपर डोरे की गांठ बांधते हैं जिसके पूरी होने पर बाजे-गाजे के साथ गांठ खोलने एवं फिर पूजन करने आते हैं। इसके लखनऊ चिड़ियाघर में दो वृक्ष हैं और उज्जैन शहर में भी एक वृक्ष पाया गया है। वास्तव में यह विशालकाय वृक्ष दक्षिणी अफ्रीकी मूल का है जिसकी उम्र 5000 वर्षो से ज्यादा होती है। विशालकाय आकार और हजारों साल की उम्र के कारण बाओबाब वृक्ष अफ्रीका का लोकप्रिय चिन्ह बन गया है और उसे पोस्टकार्ड, सिक्कों एवं बैंक के ''लोगो'' में दर्शाया गया है। इसकी ऊंचाई 60 से 70 फिट होती है, मुख्य तना हाथी के पांव की तरह होता है इसीलिये इसे ''हाथी पांव'' के नाम से भी जाना जाता है। सावन - भादों में यह वृक्ष पत्तों एवं फलों से लदा दिखाई पड़ता है। फूल प्रायः सफेद रंग के 4 से 6 इंच चौड़े होते हैं, जिनसे पके सन्तरों की सुगन्ध आती है। फूल प्रायः रात्रि में ही खिलते हैं और 7 से 8 बजे प्रातः तक बन्द हो जाते हैं। फल करीब एक फुट लम्बे होते हैं तथा पकने पर खट्टे मीठे होते हैं।

अफ्रीका के लोगो का विश्वास है कि इस वृक्ष में अच्छी एवं बुरी आत्माये का वास होता है जिनकी लोगों पर वर्षा हो सकती हैं। ऐसी भी धारणा है कि इस वृक्ष की छाया से कुछ ही लोग पार पा सकते हैं क्योकि डरते हैं कि पार करते समय बुरी आत्माऐं, शाखायें या पत्तियां उन्हे पकड़ लेगी। अफ्रीका में लोग ऐसा भी मानते है कि वर्षा का भगवान ''ऐसा'' स्वयं इसी वृक्ष में बसता है जिससे वह आकाश के पास रह सके। तनों की छाल हाथी की खाल की भांति होने के कारण इसके अन्दर पानी अधिक मात्रा में संग्राहित हो जाता हैं जो अकाल एवं सूखे के समय में जीवन बचाता हैं। पुरानी छाल निकालने के बाद दूसरी छाल निकल आती है जिससे रस्सियां, झोले, मछलियां पकड़ने का जाल और संगीतमय तार भी तैयार किये जाते हैं।

बाओबाब वृक्ष को बन्दर भोजी वृक्ष के नाम से भी जाना जाता है क्योकि इसके खट्टे मीठे फलों को बन्दर बड़े चाव से खाते हैं, परन्तु सुल्तानपुर वासियों ने बताया कि उन्होने इसके फूल तो बहुतायत से देखे हैं पर फल बनते कभी नहीं देखा है। इसी कारण से यहां पर बन्दर नहीं आते हैं।

पत्तियों को उबालने के बाद सलाद के रूप में खाते हैं। फल के गूदे से अचार एवं शर्बत बनाया जाता है। जिम्बाम्बे में वैद्य लोग इसके फलों एवं मुर्गी के पंखों को एक साथ उबालकर उसका पानी पिलाते हैं जो नपुंसकता दूर करता है। पत्तियों का काढ़ा ज्वर नाशक होता है और इसकी छाल विष हरण के रूप में काम आती हैं।

कल्पवृक्ष केवल संकल्पित वस्तुएँ ही देता है। कामधेनु काम्य वस्तु ही प्रदान करती है। चिन्तामणि चिन्तित पदार्थ देने में समर्थ है, किन्तु सत्पुरूषों का संग सब कुछ देने का सामर्थ्य रखता है।

– ''सुभाषितावली''

अभिसूचक अथवा सूचक पादप जातियाँ

(Indicator Plants)

हर्ष चौधरी
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा

आदिकाल से ही मानव एवं वनस्पतियों का अटूट् सम्भन्ध रहा है। मानव की सामाजिक और आर्थिक उन्नति में वनों और वनस्पतियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है, क्योंकि ये ईधंन, खाद्य पदार्थ, चारा और जीवनदायिनी औषधियों का कभी न समाप्त होने वाला स्त्रोत हैं, परंतु प्रतिवर्ष तेजी से बढती हुई जन संख्या और उसके आवास, खाद्य आदि जैसी अन्य आवश्यकताओं ने एक विकराल समस्या का रूप धारणा कर लिया जिसके निवारण के लिये औद्योगिक एवं (हरित क्राँति) कृषि का जन्म हुआ। इन सबसे वनों और पर्यावरण पर गंभीर दबाव बढ़ा है और परिणाम स्वरूप वन संम्पदा तथा अन्य प्राकृतिक संसाधनों का तेजी सेविनाश हुआ जो प्रतिदिन तीव्र होता जा रहा है। इस विनाश का सबसे गंम्भीर पहलू यह है कि हजारों पड़े पौधों की जातियाँ जो शायद आर्थिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकती थीं वह हमारे किसी भी काम आये बिना ही नष्ट हो गई हैं या नष्ट हो रही हैं।

भारत जैसे विशाल देश में जहाँ विभिन्न प्रकार की जलवायु व भौगोलिक परिस्थितियाँ हैं, लगभग 17000 आवृतबीजी पेड़-पौधों की जातियाँ पाई जाती हैं जो अपनी अतिजीविता (Survival) हेतु विभिन्न आवासों में रहती हैं। यह आवास अपने अपने भौतिक और जैव कारकों के समुच्चयों के आधार पर एक दूसरे से अपनी पृथक एवं विशेष पहचान बनाये रहते हैं। जीवों (प्राणि तथा वनस्पति जात) की पर्यावरण पर निर्भरता तथा उसमें होने वाले परिवर्तनों के प्रति संवेदनशीलता या विषम परिस्थितियों में भी जीवित रहने के लिये विभिन्न प्रकार की अनुकूलता को विकसित करने की क्षमता इनकी अनिवार्य आवश्यकता है।

जीवों की किसी आवास विशेष में विविधता उनका बाहुल्य एवं वितरण उस पर्यावरण विशेष की संतुलित अवस्था को दर्शाते हैं। ऐसे पर्यावरण में जीवों की आवश्यक जीवन क्रियाओं और उस पर्यावरण के विभिन्न कारकों के बीच तारतम्य स्थापित हो चुका होता है।

विभिन्न पेड़-पौधों और परिस्थितिक कारकों की इस आपसी जानकारी का प्रयोग पर्यावरण सूचकों के रूप में किया जा सकता है। अनेकों पेड़ पौधे इस बात की जानकारी देते हैं कि आर्थिक लाभ हेतु किस स्थान विशेष का उपयोग कृषि अथवा वन लगाने, या घास के मैदान बनाने में किया जा सकता है। इसी प्रकार खनिज या धातु की अमुक स्थान पर उपस्थिति का अनुमान सूचक पौधों के आधार पर किया जा सकता है। ऐसे पौधे जो किसी विशेष पर्यावरण अवस्था का संकेत देते हैं,

सूचक पादप कहलाते है। ऐसा देखा गया है कि छोटे पौधों की जातियों (herbaceous species) की तुलना में बड़े पौधों/वृक्षों (strubs/trees) की जातियाँ ज्यादा सटीक एवं भरोसेमंद होती हैं। कुछ महत्वपूर्ण और उपयोगी सूचक पादप जातियाँ इस प्रकार हैं–

1. **कृषि सूचक** (Plant Indicators for Agriculture) :

पेड़ पौधों की बहुत सी जातियाँ मिट्टी की उपयुक्तता के विषय में ये जानकारी देती हैं कि कौन सी मिट्टी कृषि योग्य है और कौन सी नहीं। छोटी-छोटी धासों वाली जमीन पानी की कमी का संकेत देती है जबकि लंम्बी व ऊँची घाँसों वाले मैदान पर्याप्त नमी और मिट्टी के उपजाऊ होने की जानकारी देते हैं। जिससे ये निर्ष्कष आसानी से निकाला जा सकता है कि भूमि कृषि के लिये उपयुक्त है।

बहुत से पौधे मिट्टी में पाये जाने वाले उर्वरक तत्वों तथा लवणों की उपस्थिति की सूचना देते है, जैसे–

साल्वेडोरा ओलिओइडिस मिट्टी मे कौल्सियम तथा बोरॉन की प्रचुरता दर्शाता है। ऐसी मिट्टी खेती के लिये उत्तम समझी जाती है।

पीगेनम हरमाला नामक पौधे की उपस्थिति उस स्थान की मिट्टी में नाईट्रोजन तथा लवरणों की अधिकता बताती है।

ब्यूटिआ मोनोस्पर्मा अति क्षारीय मिट्टी में जबकि रयूमेक्स ऐसीटोसेला अम्लीय मिट्टी में उगता है।

सालसोला, स्वेडा आदि जाति के पौधों की उपस्थिति उस मिट्टी के खारे पानी से प्रभावित रहने का संकेत देती है।

ऐन्ड्रोपोगान नामक घाँस की उपस्थिति, मिट्टी के बलुई दुमट प्रकार की होने की जानकारी देते हैं।

कैजुराइना इक्विसिटीफोलिया, सिद्रलस कोलोसिंथिस, पैनिकम घाँस की अनेकों जातियाँ, **टेमेरिक्स** आदि रेतीली मिट्टी में उगते हैं।

इंम्परेटा सिलिंड्रिका नामक घाँस मृण्मय (Clayey) मिट्टी में उगती है।

मोनोट्रोपा, इपीपोजियम, नियोट्टिया, मशरूमों की अनेकों जातियाँ अपने उगने वाले स्थान की मिट्टी में हयूमस की प्रचुर मात्रा दर्शाती हैं।

स्ट्रोबाइलैंथिस इंपेशेन्स आदि की जातियाँ ऐसे स्थानों में उगती हैं जहाँ की मिट्टी में हयूमस की मात्रा अत्यधिक होती है। इस प्रकार की मिट्टी में अन्य वृक्षो का पनपना दुष्कर होता है।

बहुत से ऐसे पेड़-पौधे हैं जोकि शुष्क जलवायुवाले क्षेत्रों में, जहाँ पानी बहुत ही कम मात्रा मे उपलब्ध होता है उगना पसंद करते हैं जैसे, **अकेशिया, कैलोट्रोपिस, अगेव, प्रोपंशिया, सैक्रम बेंगालेन्स** इत्यादि।

टाईफा, फ्रैगमाईटिस, वेटीवीरिया आदि जलमग्न स्थानों पर ही उगते हैं।

इस प्रकार किसी स्थान विशेष पर उगने वाली वनस्पतियों के माध्यम से वहाँ की मिट्टी के बारे में जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

इस जानकारी से अलग अलग जगहों पर उपयुक्त फसलों का चुनाव किया जा सकता है।

2 **अतिचारण सूचक :**

(Plant Indicators for over grazing)

वन्यपशुओं और पालतू जानवरों द्वारा पेड़ पौधों की अत्यधिक चराई होने से घाँस के मैदानों, चारागाहों और वनों का स्वरूप प्रभावित होते देखा गया है। कुछ पौधे ऐसे लक्षाण दर्शाते हैं कि जिन्हें देख कर यह आभास सहज ही हो जाता है कि उनका अतिचरण हुआ है। किसी स्थान पर वार्षिक खर पतवारों और स्वाद विहीन (impalatable) बहु वार्षिक वनस्पतियों की बाहुल्यता इस बात का स्पष्ट संकेत देती है कि यह स्थान अतिचारण से ग्रस्त है। अजरेटम, **कोनाईजा, वरबीना, क्रोटन, कैसिया, माइकेनिया, लेपीडियम, चीनोपोडियम** आदि इसके कुछ सामान्य उदाहरण हैं।

3 **मृदा प्रतिक्रिया सूचक :**

(Soil reaction indicating Plants)

पेड़ पौधों की ऐसी बहुत सी जातियाँ ज्ञात हैं जिनकी उपस्थिति मिट्टी के अम्लीय अथवा क्षारीय होने का संकेत देती हैं। **रयूमेक्स, रोडोडेड्रांन, पोलीट्राबाईकम, स्फैगनम** की उपस्थिति मिट्टी का अम्लीय होना बताती है। जबकि **चीनोपोडियम, सालसोला, स्वेडा, सेलीकोर्निया** की उपस्थिति मिट्टी के लवण युक्त होना बताती है। **टेक्सस, इक्जोरा,** चीड़, टीक, साल आदि की जातियाँ मुख्यतः चूनावासी (Calcicolae या Calcium Loving) होती हैं और वे कैल्शियम की अधिकता वाली मिट्टी में उगती हैं।

4 **भौमजल सूचक :**

(Plant Indicators for Ground water)

कुछ पादप समुदाय भौमजल की गहराई और उसके खारेपन के विषय में जानकारी देते हैं, जैसे– **इयूफोरबिया, कैपारिस, अकेसिया, एनोगेइस्सस, साल्वाडोरा, पैनिकम, जिजीफस, टैमारिक्स** आदि की कुछ विशिष्ट जातियाँ।

5 **खनिज सूचक :**

(Plant Indicators for minerals)

ऐसे पौधे जो भूमि मे उपस्थित खनिज पदार्थों की जानकारी देते है उन्हें मेटैल्लोफाइट (metallophytos) कहते हैं। निम्नलिखित कुछ पादप जातियाँ कुछ विशेष धातुओं की मौजूदगी में मिट्टी में उगती हैं जैसे–

वैलीसिया कैंडिडा, जिस स्थान पर हीरे (diamond) पाये जाते हो वहा उगता है।

उक्वीसीटम आरवेंसिस, पैपावर लीबोनाँटिकम, थूजा की उपस्थिति उस स्थान पर स्वर्ण खनिज होने का संकेत देती है, वैसे ही **इरियोगोनम, ओवैलीफोलियम** चाँदी खनिज की मौजूदगी की सूचना देता है, **विस्केरिया अलपाईना** ताम्र खनिज की, **वायेला** की जातीयाँ जस्ते की, **लिक्यूआला ओवेटा, डेक्रीडियम** की कुछ जातियाँ लौह खनिज की, तथा **इयूरोशिया सिराटो-आईडिस** भूमि में बोराँन् खनिज के होने की जानकारी देते है।

6 **प्रदूषरण सूचक :**

(Pollution Indicator Plants)

प्रदूषण का प्रभाव जीव-जन्तुओं की तुलना

में पेड़-पौधों पर ज्यादा प्रभावी होता है और प्रदूषण से उत्पन्न प्रभावों (विकारों) को पेड़-पौधो पर आसानी से देखा जा सकता है। अनेकों ऐसी संवेदनशील पादप जातियाँ ज्ञात हैं जिनकों कि प्रदूषण सूचक के रूप में अथवा प्रदूषक तत्वों को शोषित करने के लिये प्रदूषण प्रतिरोधी पौधों की तरह से इस्तेमाल किया जा सकता है।

वैज्ञानिक खोजों और प्रयोगों से पता चला है कि बहुत से ऐसे रासायनिक विषैले पदार्थ जो रासायनिक उर्वरकों, पेट्रोल अथवा डीजल, खनिज कोयले, कीट नाशकों के उपयोग की प्रक्रिया से उत्पन्न होते हैं, पर्यावरण (वायु, जल, मूदा) को दूषित करते हैं। ये विषैले पदार्थ पेड़-पौधों द्वारा अपने आप में शोषित कर लिये जाते हैं किन्तु इन प्रदूषक पदाथों का उच्चमात्रा में एक लम्बे समय का आपावरण (exposure) पेड़-पौधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है जिसको इनके विभिन्न भागों पर सहजता से देखा जा सकता है। इस प्रकार के प्रभावित पौधों में, हरिमाहीनता (chlorosis), उतकक्षय (necrosis), पत्तियों का असमय ही गिर जाना, अथवा पौधे के संम्पूर्णतया सूख कर समाप्त होने के लक्षण आसनी से देखे जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त प्रदूषक तत्वों का प्रभाव पौधों की उतक संरचना, उपापचय (metabolism), कायिकीय (Physiology) पर भी पड़ता है जिसके फलस्वरूप उनमें संरचनात्मक परिवर्तन भी हो सकते है।

वाह्यत्वचा आकारिकी (epidermal morphology) के अध्यन की सहायता से विभिन्न प्रकार के प्रदूषक पदार्थों की वायुमंडल में उपस्थिति का पता लगाने में आशातीत सफलता मिली है। उपत्वचा (cuticle) और वाह्यत्वचा (epidermis) में क्षतिस्वरूप वाले परिवर्तनों के माध्यम से वायु प्रदूशण की सूचना प्राप्त होने में सहयता प्राप्त की जा सकती है। पत्तियों के ईधंन विहीन भार (Dry weight), पत्तियों का पीला पड़ना व समय से पहले गिर जाना, पत्तियों की मोटाई का कम होना, कोशिकाओं के आकार का छोटा होना आदि वायु का धुँयें और अन्य गैसों जैसे, सल्फर डाई आक्साईड इत्यादि से प्रदूषित होना बताता है।

उपरोक्त कुछ तथ्यों से पता चलता है कि सदियों से प्रचलित पेड़-पौधों के नाना प्रकार के उपयोगों के अतिरिक्त, विभिन्न परिस्थितिकीय सूचको के रूप में भी इनका महत्वपूर्ण योगदान हो सकता है, जो धन, समय और परिश्रम की बहुत बड़ी बचत करेगा। जरूरत सिर्फ इस दिशा में शोध करने तथा उचित एवं अपेक्षित तकनीक विकसित करने की है।

प्राण देकर भी विश्वास बनाये रखना चाहिये।

– ''सोमनीति वाक्यामृतम''

रूद्राक्ष

श्री कृष्ण मूर्ति
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा

पेड़-पौधों और मनुष्य का अटूट सम्बंध है। हमारे दैनिक जीवन के प्रत्येक पहलू में वनस्पतियों का किसी न किसी रूप में योगदान रहता है, चाहे वह भोजन, वस्त्र, मकान, औषधि से सम्बंधित हो या फिर मनोरंजन, सांस्कृतिक, धार्मिक अथवा तंत्र-मंत्र से।

रूद्राक्ष भारतीय जन-मानस विशेषकर हिन्दू धर्म में एक विशिष्ट स्थान रखता है। रूद्राक्ष को निर्वाण, मुक्ति, ज्ञान और पवित्रता का प्रतीक माना गया है। ऐसा कहा जाता है कि इसे धारण करने से दुःख, प्रेतात्मा के प्रभाव तथा अन्य कलुषित भावों से मक्ति मिलती है। रूद्राक्ष का अर्थ होता है रूद्र यानी भगवान शंकर की आँख। यह नाम ही इस पेड़ के चर्चित, महत्वपूर्ण एवं विशिष्ट स्थान को दर्शाता है। अपने धार्मिक, आध्यात्मिक, औषधीय एवं तंत्र-मंत्र सम्बंधित गुणों और विश्वासों के कारण रूद्राक्ष सदैव चर्चित रहा है। कुछ लोगों के मतानुसार एक बार जब शंकर असुरों से युद्ध कर रहे थे तो युद्ध की विनाश लीला को देख कर वो रो पड़े और जहाँ जहाँ उनके आँसू गिरे वहाँ वहाँ वृक्ष उग आया जिसे रूद्राक्ष कहा गया। शिव-पुराण के पच्चीसवें पर्व में वर्णित प्रसंगानुसार रूद्राक्ष की उत्पत्ति भगवान शंकर के नेत्रों से मानी गई है। पौराणिक कथाओं से जुड़े एक अन्य प्रसंगानुसार जब भगवान शिव असुरों के वध के लिये ब्रह्मांड में उनका पीछा कर रहे थे तो श्रम के कारण पसीनें की बूंदें गिरने लगीं। इन्ही बूंदो से रूद्राक्ष की उत्पत्ति हुई। इन्ही चर्चाओं के कारण कुछ किंवदंतियाँ भी रूद्राक्ष के साथ जुड़ गईं। भारत के धार्मिक तीर्थस्थलों में इसे प्रचुर मात्रा में बाजारों में बिकते हुये देखा जा सकता है। मांग और आपूर्ति में सामंजस्य न होने के कारण बाजारों में नकली रूद्राक्ष भी काफी मिलते हैं। भारत में रूद्राक्ष अन्य देशों से आयात भी किया जाता है।

रूद्राक्ष का वृक्ष भारत में पूर्वोत्तर क्षेत्र के प्रदेशों तथा दक्षिण भारत के पश्चिमी घाट के 500-2000 मीटर ऊँचाई वाले गर्म व नम उष्ण कटिबन्धीय वर्षा वनों के क्षेत्रों में प्राकृतिक रूप से पाया जाता है, परन्तु अपने सदाबहार और छाया देने के गुणों के साथ-साथ बीज की उपयोगिता के कारण यह बृक्ष समस्त भारत मे (शुष्क एवं मरूस्थलीय पश्चिमोत्तर क्षेत्र को छोड़ कर) उगाया भी जाता है। भारत के बाहर यह वृक्ष नेपाल, बांग्लादेश, म्यांमार (वर्मा), मलाया और इन्डोनेशिया में भी पाया जाता है। यद्यपि इस वृक्ष के पाये जाने का क्षेत्र बहुत विस्तृत है, परन्तु यह कहीं भी बहुतायत से नही वरन् इक्का-दुक्का ही पाया जाता है।

रूद्राक्ष के पेड़ का वैज्ञानिक नाम ईलियोकार्पस स्फेरिकस है जो ईलियोकार्पेसी कुल का वृक्ष है। अन्य भाषाओं में इसके अलग अलग नाम है, जैसे–

असमी : रूद्राई, बंगाली : रूद्राख, रूद्राक्ष : रूद्राक्या, गुजराती : रूद्राक्ष, मराठी : रूद्राक्ष, कन्नड़ : रूद्राक्षी, तमिल : अक्कम, रूद्रकाई, तेलुगू : रूद्राक्षालू, मलयालम : रूद्राक्ष, खासी : सोह लांगस्काई, हिन्दी : रूद्राक्ष, रूद्राक, संस्कृत : रूद्राक्ष, शिवाक्ष, शिवप्रिय, पुष्पचँवर, नीलकंठाक्ष, हटाक्ष, भूतनाशन, थुनमेरू।

अंग्रेजी में इसे वुडेन बेगर बीड, उद्रासम बीड, जावा में इसे गैनिट्री, जैनिट्री और मलाया में चांगकान, रिजाक्सा कहते हैं।

ईलियोकार्पस की विश्व में लगभग 200 जातियाँ ज्ञात हैं, जिनमें से 29 जातियाँ भारत में पाई जाती हैं। **ईलियोकार्पस स्फेरिकस** एक सदाबहार मध्याकार वृक्ष होता है, जिसकी ऊँचाई लगभग 18 मीटर और मोटाई लगभग 1 मीटर तक होती है। इसकी पत्तियाँ आम की पत्तियों से मिलती जुलती परन्तु इनके किनारे अक्सर दो-चार बहुत ही सूक्ष्म दातों से युक्त होते हैं जो मार्च से जून तक खिले रहते हैं। इसके फूल सफेद रंग के तथा गुच्छों में होते हैं। ये गुच्छे वृक्ष पर नीचे की ओर झुके हुये लगे रहते हैं। फूल लगभग 1-1.5 सें० मी० आकार के होते हैं जिसकी पंखुड़ियाँ उपरी सिरे पर कटी फटी रहती हैं। इसका फल हल्का नीलापन लिये बैंगनी रंग का, गुठलीदार होता है, जिसमें खाने योग्य हल्के हरे-पीले रंग का गूदा होता है। फल सितम्बर से नवम्बर तक पकते हैं। फल लगभग 2-3.5 सें०मी० आकार का गोल या अण्डाकार होता है। फल के अन्दर एक गुठली होती है जो कड़ी, गोल या अण्डाकार, बहुत ही खुरदुरी तथा त्वचा को चुभने जैसी स्थिति तक दरदरी, लगभग 1-2 सें० मी० ब्यास तक की होती है। गुठली प्रायः पाँच कोष्ठीय होती है, परन्तु प्रकृति में कभी-कभी एक से लेकर 21 कोष्ठीय भी हो जाती है और चूँकि प्रकृति में ऐसा बहुत कम होता है अतः इन एक से लेकर 4 कोष्ठीय तथा 6 से लेकर 21 कोष्ठीय रूद्राक्ष को अनमोल और विलक्षण शक्तिवाला माना जाता है। कोष्ठों के आधार पर रूद्राक्ष को एक मुखी, द्वीमुखी, त्रिमुखी, चतुर्मुखी, पँचमुखी इत्यादि कहा जाता है।

शास्त्रों के अनुसार रूद्राक्ष के चार प्रकार होते हैं- ब्राह्मण अथवा श्वेत वर्ण का रूद्राक्ष, क्षत्रीय अथवा लाल वर्ण का रूद्राक्ष, वैश्य अथवा पीले वर्ण का रूद्राक्ष तथा शूद्र अथवा कालापन लिये लाल रंग का रूद्राक्ष। इन्ही के अनुसार रूद्राक्ष धारण करने का सबसे शुभ समय सूर्य तथा चन्द्र ग्रहण, पूर्णिमा, अमावस्या और मेष संक्रान्ति है। प्रकृति में रूद्राक्ष प्रायः लाल अथवा गहरे भूरे रंग का होता है।

असली रूद्राक्ष की पहचान के विषय में भी अनेक मत् प्रचलित हैं। कुछ लोगों के अनुसार असली रूद्राक्ष पानी में डालने पर डूब जायेगा, पानी में डालने के कुछ समय पश्चात ताप उत्पन्न होने लगता है, कच्चे दूध में रूद्राक्ष डालने से कई दिनो तक दूध खराब नही होता है, उबलते पानी मे डालने पर भी असली रूद्राक्ष मे दरार नही पड़ती, दो ताँबे के सिक्कों के बीच दबाने पर रूद्राक्ष विपरीत दिशा में घूमने लगता है तथा कम्पन पैदा करता है, इत्यादि-इत्यादि।

विभिन्न कोष्ठों वाले रूद्राक्ष का प्रभाव भी अलग-अलग माना जाता है। प्रचलित मान्यताओं

के अनुसार एक मुखी रूद्राक्ष स्वयं शंकर का प्रतीक माना गया है तथा मोक्षदायक माना जाता है, द्विमुखी रूद्राक्ष शंकर-पार्वती का प्रतीक है तथा तांत्रिक शक्ति से भरपूर और सम्पूर्ण कामनाओं को पूरा करने वाला माना जाता है। अग्नि स्वरूप त्रिमुखो रूद्राक्ष को विद्यार्जन हेतु उपयोगी समझा जाता है। चतुर्मुखी रूद्राक्ष ब्रह्मा का प्रतीक, चार वेदों का प्रतिनिधित्व करने वाला, धर्म, अर्थ, काम, एवं मोक्ष प्रदान करने वाला, तथा बुद्धिसुख, सृजनशीलता एवं संतानदायक माना गया है। पंचमुखी रूद्राक्ष तांत्रिक कुप्रभावों से मुक्ति दिलाता है। छः मुखी रूद्राक्ष को कार्तिकेय का प्रतीक माना गया है और ऐसी मान्यता है कि यह राजनीतिक पद वृद्धि और विरोधियों पर विजय प्राप्त कराता है। सप्तमुखी रूद्राक्ष सूर्य और सप्त ऋषियों का प्रतीक माना गया है एवं आध्यात्मिक शक्ति, ज्ञान व ऐश्वर्य का दाता समझा जाता है। अष्टमुखी रूद्राक्ष गणेश का प्रतीक एवं विघ्न बाधा दुर्घटना और अन्य अनिष्टकारी प्रभावों से मुक्ति दिलाने वाला माना जाता है। नौमुखी रूद्राक्ष तांत्रिक साधना एवं नवग्रह शांति के लिये उपयोगी माना जाता है। यह दुर्गा एवं भैख का प्रतीक माना जाता है। दसमुखी रूद्राक्ष विष्णु का प्रतीक समझा जाता है। यह भयनाशक तथा शत्रु पर विजय दिलाने वाला माना जाता है। एकादश मुखी रूद्राक्ष सर्वत्र विजय एवं सुख शांति दिलाने वाला माना गया है। द्वादशमुखी रूद्राक्ष भयमुक्त करता है। त्रयोदश मुखी रूद्राक्ष समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाला तथा संतांन दाता माना गया है। चतुर्दश मुखी रूद्राक्ष को हनुमान का प्रतीक माना जाता है।

एक से 21 मुखी रूद्राक्ष मनकाओं की माला को 'इन्द्रमाला' कहा जाता है। ऐसी मान्यता है कि 'इन्द्रमाला' सभी इच्छाओं को पूरा करता है। पौराणिक मतानुसार एक हजार रूद्राक्ष-मनकाओं की माला धारण करना अति उत्तम माना गया है। 108 रूद्राक्ष मनकाओं वाली माला को पूर्णमाला कहते हैं। 54 मनकाओं वाली माला को अर्धमाला तथा 27 मनकाओं वाली माला को 'सुमरनी' कहते हैं। 32 मनकाओं वाली माला को 'कन्ठा' कहते हैं। एक मुखी, द्विमुखी रूद्राक्ष को अकेले ही धारण करने की प्रथा है। शरीर के विभिन्न अँगो में धारण करने के लिये रूद्राक्ष की विभिन्न संख्या निर्धारित की गई है– जैसे गले में छत्तिस, दोनो हाथों में सोलह-सोलह, कलाई में बारह इत्यादि। रूद्राक्ष को मुकुट, कुंडल, कर्णफूल, करधनी इत्यदि के रूप में भी धारण करने की मान्यता है। शिव-भक्तों में रूद्राक्ष धारण करने की प्रथा अधिक है। ऐसी धारणा है कि रूद्राक्ष एक सम्पूर्ण तंत्र-मंत्र, एवं यंत्र है और इसमे ऋिद्धि एवं सिद्धि प्रदान करने की सम्पूर्ण शक्ति है।

धार्मिक एवं आध्यात्मिक महत्वों के अतिरिक्त रूद्राक्ष में अनेकों औषधीय गुणा बिद्यमान हैं। रूद्राक्ष का प्रयोग मानसिक तनाव तथा उच्च रक्तचाप को कम करने में किया जाता है तथा मिरगी, हृदय रोग, क्षय रोग एवं नाड़ी विकार में भी उपयोगी माना गया है। ऐसी मान्यता भी है कि रूद्राक्ष को पानी में रात भर रखने के बाद उस जल को पीआ जाये तो पेट के कई विकार दूर हो जाते हैं तथा तिल के तेल में 21 दिन तक रूद्राक्ष रख कर उस तेल को जोड़ों में लगाने तथा मालिश करने से जोड़ों

के दर्द में आराम हो जाता है। बहुत से लोगों का यह भी मानना है कि तकिये के नीचे रूद्राक्ष रख कर सोने से अनिद्रा रोग से छुटकारा मिलता है। रूद्राक्ष वात्, पित्त और कफ़ के विकारो को ठीक करता है।

रूद्राक्ष के फलों को पकने पर पेड़ से गिरते ही एकत्र कर लिया जाता है या सीधे पेड़ से ही तोड़ लिया जाता है। इसके गूदे को रगड़ कर निकाल देते हैं, फिर गुठलियों को पानी से अच्छी तरह साफ करते हैं। साफ करने के बाद इन पर पालिश करते है या फिर लाल अथवा भूरा रंग चढ़ाते हैं। मांला बनाने के लिये इन गुठलियों मे छेद करते हैं जो इन गुटलियों मे प्राकृतिक रूप से ही पाया जाता है जो फल की डन्डी के सीध मे होता है। इस छेद को ही सूई द्वारा आसानी से छेद कर बड़ा किया जाता है। रूद्राक्ष का आकार के आधार पर मुल्यांकन किया जाता है।

रूद्राक्ष को तरह तरह के सजावटी सामानों को बनाने, घर में सजावट जैसे, पर्दो को सजाने, दीवालों पर विभिन्न रूपों में प्रदर्शित करने तथा अन्य सजावट के रूप में भी उपयोग किया जाता है।

उपर्युक्त वर्णित मान्यताओं, धारणाओं , विश्वास और उपयोगों के कारण रूद्राक्ष का ब्यापारिक हष्टि से बहुत महत्व है, जिसके कारण इसकी मांग बहुत ज्यादा है। फलस्वरूप इसकी आपूर्ति मे कमी को दूर करने के लिये नकली रूद्राक्ष भी बाजार में खूब मिलते हैं। नकली रूद्राक्ष को भद्राक्ष भी कहा जाता है। भारत मे रूद्राक्ष नेपाल, मलाया और इन्डोनेशिया से आयात भी किया जाता है।

देश मे रूद्राक्ष की बढ़ती हुई मांग को देखते हुये इस वृक्ष को उगाने का प्रयावास भी किया जा रहा है। यह गर्म और अधिक नमी वाले क्षेत्रों में वर्षा जहाँ काफी मात्रा में लम्बे समय तक, निर्बाध गति से होती हो और मिट्टी में पानी की निकासी की उचित व्यवस्था हो आसानी से उगाया जा सकता हैं। बीजो को रोपणी मे बोया जाता है और सूखे मौसम मे समय-समय पर प्रचुर सिचाई की ब्यवस्था करनी पड़ती है। जब पौधे 15-20 सें० मी० ऊँची हो जाते हैं तो उन्हे 30 x 30 x 30 सें० मि० के गड्ढों में लगभग 8-9 सें० मि० का फासला छोड़ कर प्रतिरोपित कर दिया जाता है। वृद्धि के प्रारम्भिक चरणों में पौधों को ढोर-डंगर से बचाना आवश्यक है। नम जगहों में वृक्ष सबसे अच्छे बढ़ते हैं। वृक्ष के लगभग 3 से 5 वर्ष का हो जाने पर इसमें फूल और फल आने लगते हैं।

रूद्राक्ष अपने अनेक और विविध गुणों के कारण केवल धार्मिक, अध्यात्मिक अभिरूचि वाले तथा तंत्र-मंत्र साधना करने वाले व्यक्तियों में ही नहीं अपितु सर्व साधारण मनुष्यों मे भी लोकप्रिय है। यहाँ तक कि अत्याधुनिक विचारों वाले व्यक्ति भी इसको अलंकरण तथा सजावट की वस्तु के रूप में अपना रहे हैं। स्वस्थ शरीर, सात्विक विचार, पवित्र मन और आत्मिक शक्ति के लिये रूद्राक्ष के योगदान को स्वीकार किया जा रहा है। देखना यह है कि रूद्राक्ष अपने आप को 'रामबाण' औषधि अथवा सर्व रोगध्न औषधि (Panacea) के रूप मे कितना और कब प्रतिष्ठापित कर पाता है।

कल्पवृक्ष

आर० सी० श्रीवास्तव एवं ए० ए० अन्सारी
भारतीय वनस्पति उद्यान, हावड़ा

भारतीय प्राचीन ग्रंथों में समस्त कामनाओं की पूर्ति करने वाले 'कल्पवृक्ष' या 'देववृक्ष' का विवरण अनादिकाल से चला आ रहा है। यह तो स्पष्ट नहीं कहा जा सकता है कि कोई ऐसा वृक्ष है जिससे मनुष्य की समस्त मनोकामनाएँ पूर्ण हो सके फिर भी 'बावोबाव' या मंकीब्रेड ट्री के नाम से ज्ञात सेमल कुल (बाम्बेकेसी) के एक वृक्ष जिसका वनस्पतिक नाम **एडेन्सोनिया डिजिटाटा** को कल्पवृक्ष की संज्ञा दी जाती रही हैं। वस्तुतः इस वृक्ष का मूल निवास उष्णकाटिबंधीय अफ्रीका है जहां से मुसलिम व्यापारियों द्वारा यह वृक्ष भारत में लाया गया। इस समय यह भारत में अनेक स्थानों पर देखा आ सकता है। कलकत्ता, लखनऊ, मद्रास, रतलाम (म. प्र.) झूंसी (इलाहाबाद, उ. प्र.) में कुछ एक वृक्ष तथा भारत के पश्चिमी तट में यह वृक्ष अच्छी संख्या में दिखते हैं।

इस वृक्ष का वंश नाम ('एडेन्सोनिया') फ्रेंच वैज्ञानिक एम० एडेन्सन के सम्मान में है तथा दूसरे भाग अर्थात प्रजातीय नाम (डिजिटाटा) का तात्पर्य है उँगली की तरह जो उसकी पत्तियाँ की रचना का सूचक है। उसके स्थानीय नाम भी अनेक हैं। सभी स्थानीय नामों का कुछ न कुछ आधार एवं तात्पर्य है। इसके फल के आकार-प्रकार के कारण इसे अफ्रीकी कालावास वृक्ष कहते हैं। इसके फल के गूंदे के गुण के संदर्भ में इसे क्रीम आफ टारटर ट्री, भी कहा जाता है। इसके फलों को बंदर बहुत चाव से खाते है जिससे इसे मंक्रीब्रेड ट्री भी कहते है। इसके तने का व्यास लगभग 10 मीटर तक होता है। मोटे तने के ऊपर की ओर शाखाएँ निकलती हैं। इसकी दीर्घायु के विषय में एडनसन महोदय ने अफ्रीका में एक वृक्ष की आयु 5000 वर्ष आंकी थी। उन्होंने अफ्रीका में अनेक ऐसे वृक्षों को देखा था जिसके तने पर लोगों ने 14 वी तथा 15 वी सदी में अनेक नाम खोद रखे थे। ये वृक्ष 18 वी सदी में पूर्णतः स्वस्थ थे।

यह सीधा खड़ा वृक्ष लगभग 20 मीटर ऊँचा होता है। पत्तियाँ बड़ी तथा सेमल की पत्तियों की तरह होती है। एक मजबूत डंठल के अग्र भाग पर 5-7 तक उपपर्ण एक ही स्थान से निकलते हैं। पुष्प लगभग 10-15 से० मी० लम्बे श्वेत तथा लुभावने होते है। फल लगभग 20-30 से० मी० लम्बे होते हैं तथा एक मजवूत डंठल के सहारे लटकते हुए देखे जा सकते हैं। पुष्पित वृक्ष अति आकर्षक प्रतीत होता है।

इस वृक्ष की लकड़ी मुलायम होने के कारण फर्नीचर आदि के अनउपयुक्त होती है परन्तु उसका उपयोग माचिस बनाने में होता है। अफ्रीका में इस वृक्ष के प्रत्येक भाग का कुछ न कुछ उपयोग होता है। इसके फल के

मजबूत एवं उन्नत किस्म के रेशों से झोले, रस्सी, कागज आदि बनाया जात है। उससे बना कागज 'नोट' छापने के लिए अत्यन्त उपयुक्त होता है।

फंल के गूदे को विभिन्न प्रकार के ज्वरों के निदान में उपयोगी पाया गया है। उससे एक ठंडा 'शरबत' भी बनाया जाता है। छाल का उपयोग मलेरिया के उपचार में कुनैन के स्थान पर होता है तथा सूखी पत्तियों का उपयोग पसीना लाने एवं गुर्दे के रोगों को ठीक करने में किया जाता है। इसके तने पर धाव करने से गोंद निकलता है जिसका उपयोग पशुओं के बदबूदार धावों को साफ करने में किया जाता है।

छाल एवं फलों की राख को तेल में उबालकर साबुन की तरह उपयोग करते हैं। सूखे पत्तों को मछली मारने के जाल के साथ लगे गुब्बारों के रूप में उपयोग करते है। उसके विशालकाय तने के अंदर लगभाग 30 जनों का एक परिवार आसानी से सो सकता है।

अफ्रीका में कुछ स्थानों पर विशिष्ट लोगों या ओझाओं के मृत शरीर को इसके तने के अन्दर डाला दिया जाता था जो पूर्णतया सूख कर 'ममी' के रूप में परिवर्तित हो जाता था। इसी कारण अनेक भ्रांतियां भी उस वृक्ष के साथ जुड़ी है।

फिलहाल! यह लुभावना वृक्ष 'कल्पवृक्ष' भले ही न सही, अत्यन्त उपयोगी तो है ही!

गुणियों को अपने रूप का ज्ञान दूसरों के द्वारा होता है। वे स्वयं अपने गुणों को नहीं जान सकते, नेत्र अपने गौरव का अनुभव तब तक नहीं कर सकते जब तक उनके सामने दर्पण न रखा जाए।

– ''कविता कौमुदी''

गंगा की तटीय व जलीय वानस्पतिक विविधता

सर्वेश कुमार
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

''यैं पुण्य वाहिनी गंगा सकृतक्ययावगाहिता।
तेषां कुलानां लक्षन्तु मंयात् तारयते हिवा।।
अनेक जन्म सम्भूतं पापं पुसांप्रणश्यति।
स्नान मात्रेण गंगायां सद्यः पुण्यस्य भाजनम्।।''

ब्रह्मानन्द पुराण के इस श्लोक का अर्थ है कि 'जो भी व्यक्ति कम से कम एक बार भक्ति भाव से गंगा के पवित्र जल में स्नान कर लेता है, उसकी सदैव के लिये हजारों खतरों से रक्षा हो जाती हैं, उसकी पीढ़ियों को पापों से मुक्ति मिल जाती है व वह स्वयं तुरन्त शुद्ध हो जाता है''। गंगा के प्रति व्यक्त यह भाव भारतीय जनमानस की श्रद्धा का स्पष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता हैं।

गंगा विश्व की सबसे अधिक चर्चित व सर्वाधिक महत्वपूर्ण नदियों में से एक है, जिसे पौराणिक समय से ही पवित्र नदी के रूप में मान्यता प्राप्त हैं। हमारे देश में इसे भारतीय संस्कृति व सभ्यता की जननी, देवनदी, पुण्य सलिला आदि अनेकों अलंकरणों से विभूषित किया जाता रहा हैं। गंगा के किनारे स्थित मन्दिरों, मठों, आश्रमों व शहरों को देखने मात्र से पता चल जाता है कि भारत के सांस्कृतिक विकास में इस पुण्य नदी का कितना बड़ा योगदान रहा हैं। ऋषिकेश से आगे बढ़ने पर लगता है मानों, हम हिन्दू संस्कृति के जलीय गलियारे से होकर गुजर रहे हैं।

जैव विविधता का अध्ययन व संरक्षण आज एक राष्ट्रीय आवश्यकता हैं। पृथ्वी की प्राकृतिक धरोहर के स्वामित्व को लेकर चल रही विकसित व विकासशील देशों के मध्य, खींचतान ने इसे और भी अधिक महत्वपूर्ण बना दिया हैं। प्राकृतिक संसाधनों विशेषकर वनस्पति की बहुलता व विविधता के लिये भारत का विश्व में अग्रणी स्थान है। यह विविधता पर्वतीय क्षेत्रों, मरूभूमि, पठार व मैदानी भागों तथा नदियों, जलाशयों व समुद्र तटीय स्थिति विशेष में पाये जाने वाले जन्तुओं व पेड़-पौधों में विशिष्ट अनुकूलनीय परिवर्तनों के कारण होती हैं। नदियों के किनारे की वानस्पतिक विविधता का अध्ययन पारिस्थितिकीय कारणों के अतिरिक्त प्रदूषण की दृष्टि से भी अति महत्व का है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने सभी प्रमुख नदियों के लिये एक वृहत् ''राष्ट्रीय नदी कार्य योजना'' का शुभारम्भ किया गया हैं, जिसमें देश के 10 प्रमुख राज्यों की 18 नदियों को शामिल किया गया हैं।

गंगा की जलीय व तटीय वानस्पतिक विविधता का अध्ययन भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण

के अतिरिक्त अन्य शोध संस्थानों व विश्वविद्यालयों के वैज्ञानिकों द्वारा किए गये सर्वेक्षण के आधार पर गंगोत्री से गंगा सागर तक पाई जाने वाली शैवाल, कवक, जीवाणु व उच्च वर्गीय वनस्पति को ब्यौरेवार वर्णन के रूप में इस लेख में प्रस्तुत किया है।

गंगा एवं उसकी सहायक नदियां भारत का सबसे बड़ा नदी तन्त्र बनाती हैं। गंगा का उद्‌गम गंगोत्री ग्लेशियर के गाय के मुख के आकार के ''गोमुख'' नामक स्थान से होता है। और इसे भागीरथी के नाम से जाना जाता है। देवप्रयाग पर अलकनन्दा के संगम के उपरान्त भागीरथी को गंगा कहा जाता हैं।

गंगोत्री से ऋषिकेश तक कई टेढ-मेढ रास्तों से गुजरती हुई गंगा लगभग 240 कि० मी० लम्बा सफर तय करती है व दक्षिण पश्चिमी दिशा में मुड़कर हरिद्वार पहुंच जाती है व यहीं से गंगा की मैदानी यात्रा शुरू होती हैं। उत्तर-प्रदेश, बिहार व बंगाल के विभिन्न गाँवों व नगरों में लगभग 2500 कि० मी० भ्रमण करती हुई गंगा अन्त में गंगासागर होती हई बंगाल की खाड़ी में समा जाती हैं। एक अनुमान के अनुसार गंगा के किनारे विभिन्न प्रान्तों में लगभग 700 कस्बे व शहर बसे हुए हैं व गंगा इनके निवासियों को जीवन-यापन के महत्वपूर्ण साधन उपलब्ध कराती है। कहीं-कहीं गंगा के चौड़े पाट नदी द्वारा स्थान बदलने अथवा जल हट जाने के कारण काफी भूमि छोड़ देते हैं, जिसे ''दियारा'' भूमि कहते हैं। दियारा भूमि का उपयोग उपजाऊ कृषि योग्य भूमि के रूप में काफी समय से होता आ रहा है।

गंगा किनारे की पादप विविधता काफी समृद्ध है, जिसका प्रमुख कारण है गंगा किनारे की जलवायु, मिट्‌टी व परिस्थितिकी का पेड़-पौधों की वृद्धि के लिये अनुकूल होना। गंगा की वानस्पतिक विविधता को मुख्यतया दो भागों में विभाजित किया जा सकता हैं :–

1 नदी के किनारे की तटीय वनस्पति।
2 नदी के अन्दर पाया जाने वाला जलीय पादप जीवन।

1 भौगोलिक दृष्टि से गंगा की पादप विविधता को तीन मुख्य अंचलों वर्गीकृत किया जा सकता है। गंगोत्री व गढ़ मुक्तेश्वर तक ऊपरी पट्‌टी
2 गढ़ मुक्तेश्वर से फरक्का तक मध्य पट्‌टी
3 फरक्का से गंगा सागर तक निचली पट्‌टी

ऊपरी पट्‌टी की वनस्पति :–

गंगा के उद्‌गम स्थल ''गौमुख'' के आस-पास नंदन वन एवं तपोवन में विशाल हिमाद्रि क्षेत्र देखा जा सकता हैं, जहां सामान्यतया उच्चपर्वतीय शाकीय वनस्पतियाँ पाई जाती हैं किन्तु कहीं कहीं (3000-3500) रहोडोडैन्ड्रान कैम्पेनुलेटम, रहो० एन्थोपोगॉन, जूनीपेरस वालीचियाना, जू० कम्यूनिस, जू० मेक्रोपोडा, सेलिक्स फ्लेबेलेरिस, बिटुला यूटीलिस, अनेकों झाड़िया और शाक आदि प्रमुखता से पाये जाते हैं।

गंगोत्री के उपहिमाद्रि क्षेत्र में देवदार, चीड़, भोजपत्र आदि जहां बहुतायत से मिलते हैं, वहीं एबीज पिन्ड्रो, पाइसिआ, क्यूप्रेसस, जूनीपेरस, सेलिक्स व रहोडोडेन्ड्रान आदि की भी कई जातियां मिलती हैं। चीड़बासा (3600

मी०) नामकस्थान को शंकुधारी वनों की सीमा कहा जाता हैं, जहां अक्सर पाईनस वालीचियाना एवं सिड्रस देउदारा के वन पाये जाते हैं। नदी के बांई ओर-पाइसिया, पाइनस-पाइसिआ तथा सिड्रस-पाइनस के समूह तथा चट्टानों पर जूनीपैरस स्क्वेमेटा सामान्यतया उगते हैं।

नदी के दोनों ओर किनारों पर सिड्रस देउदारा और कहीं कहीं देवदार व पाइनस वालीचियाना के मिश्रित वन पहाड़ ढ़लानों के आवरण जैसे प्रतीत होते हैं।

दक्षिणोन्मुखी ढलानों पर केवल देवदार के ही वन जबकि उत्तरोन्मुखी ढलानों पर देवदारों के अतिरिक्त स्प्रूस व एबीज के घने वन पाये जाते हैं।

उत्तरोन्मुखी ढलानों पर बांज एवं शंकुधारी मिश्रित वनो में बांज की जातियों में क्यूरकस फलोरिबन्डा, क्यू० ल्यूकोट्राइकोफैरा, क्यूं सेमेकार्पीफोलिया आदि प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त रहोडोडोन्ड्रॉन आर्बोरियम, लायोनिया ओवलीफोलिया, वाइबर्नम मुल्लाहा तथा क्यूप्रेसस टोरूलोसा आदि वृक्ष तथा झाड़िया पाई जाती हैं।

पथरीली भूमि पर पाये जाने वाले वृक्षों में दलबर्जिया सीसू, अकेसिया केटेच्यू, इगले मरमेलोस, बॉम्बेक्स सीबा, होलेप्टेलिया, मोरस अल्बा, मेल्लोटस फिलीपेन्सिस, सेपीअम इन्ससिग्ने, पाइरस पेशिया आदि तथा नदी के किनारों पर तूना सीलिएटा, एल्बीजिआ चाइनेन्सिसस तथा सिजीजीयम क्यूमिनी आदि प्रमुख हैं।

वृक्षों के नीचे पाई जाने वाली वनस्पति में नाना प्रकार की झाड़ियाँ, आरोही लतायें, शाकीय पौधे और घास आदि की जातियाँ प्रमुख हैं। यूफोर्बिआ रायॅलियाना दक्षिमोन्मुखी शुष्क कठोर चट्टानों पर सघन आवरण बनाता प्रतीत होता है। अन्य सामान्य शाकीय पौधों में केसिया, गेलियम, यूफोर्बिआ, सोलेनम, अर्टिका, जेन्थियम तथा वर्बेस्कम आदि की विभिन्न जातियों के अतिरिक्त अर्झीमोन मैक्सिकाना, अरेबिडोप्सिस वालीचियाई, कैप्सैला बर्सा-पेस्टोरिस, क्रोटेलेरिआ मैडिकाजीनिआ, ऑक्सबसेलिस कार्नीकुलेटा, पौर्टुलाका ऑलिरोसिया तथा सॉन्कस आलिरेसियस आदि प्रमुख हैं। घासों में सेकेरम, सिम्बोपोगॉन, साइनोडॉन व डैन्ड्रोकेलेमस आदि की जातियों का बाहुल्य मिलता हैं।

मिश्रित मानसून वन व साल वनों को मिलाकर उष्णकटिबन्धीय शील पर्णपाती वन कहा जाता हैं। वृक्षों की जातियों में ब्यूटिआ मोनोस्पर्मा, दलबर्जिआ सीसू, आउजीनिया दलबर्जिआइडिस, टर्मीनेलिआ चिबुला, ट० वेलिरिका, ट० टोमेन्टोसा, साल्मेलिआ मालाबारिका, इरिथ्रीना सुबेरोसा, एम्बलीका आफीसीनेलिस, तूना आदि प्रमुख हैं। सामान्य झाडियों में रह्स कोटीनस, रह्स पार्वीफ्लोरा, एधेटोडा, जेन्थोजाइलम अलेटम, कोलेब्रुकिआ अपोजिटीफोलिआ, जिजीफस मारीशिआना, लेन्टाना कामरा, डोडोनिआ विश्कोसा आदि प्रचुरता से पाई जाती हैं। साल के वनों में केवल कुछ ही झाड़ियां, शाकीय पौधे तथा घास दिखाई देती हैं, क्योंकि साल का आधिक्य अन्य वनस्पतियों की वृद्धि नहीं होने देता।

मध्यवर्ती पट्टी :–

मध्यवर्ती गांगेय क्षेत्र में अत्याधिक खेती

होने के कारण समृद्ध वनों का अभाव है। यहाँ पाई जाते वाली वनस्पतियों में अमनिया, ष्टक्लिटटा, पॉलीगोनम, आइपोमिया, रयूमेक्स, सेकेरम, सिरपस, टेमेरिक्स आदि उभयजीवी तथा हाइड्रिला ऐजोला व मसीलिया क्वाड्री-पोलिया तथा वेलिस्नेरिआ आदि जलीय पौधों के अतिरिक्त अन्य कई पादप जातियां तथा अनेकों घास की जातियाँ सम्मिलित हैं।

निचली पट्टी :–

निचली पट्टी में उत्तर-प्रदेश, बिहार, व प० बंगाल के क्षेत्र मिलकर नदी का विस्तृत डैल्टा बनाते हैं, जो लगभग 4000 वर्ग किमी० क्षेत्र में फैला फैला हुआ हैं। इस क्षेत्र में उष्णकटिबन्धीय वनस्पति, दियारा भूमि व मेनग्रोव वन आदि आते हैं।

इस क्षेत्र में उपयुक्त वर्षा व उपजाऊ भूमि साल के अतिरिक्त दलबर्जिआ सीसू, सिजीजीअम क्यूमिनी, मधुका लोन्गीफोलिआ, जिजीफस मारीशिआना आदि वृक्षों के लिये उपयुक्त वातावरण प्रदान करती हैं। निचले क्षेत्रों में सेकेरम बेंगालेन्स, से० अरन्डीनेशिया, इम्पेरैटा सिलिन्ड्रका आदि सामान्य हैं।

गंगा के डेल्टा की वनस्पति अपेक्षाकृत विशिष्ट होती है। निम्न गंगा डेल्टा में जहां एक ओर 173 वंशों की लगभग 327 जातियों पाई जाती हैं, यहीं दूसरी ओर मेनग्रोव वनस्पति मिलती हैं। मेनग्रोव वनस्पति में विशिष्ट परिस्थितियों को सहन करने के लिये स्टिल्ट जड़े, न्यूमेटोफोर, बट्रैस तथा नी रूट आदि होती हैं जो अधिक लवण ग्रहण करने, लहरों के अधिक वेग को सहन करने वा कीचड़ युक्त भूमि में उगने में पौधे को सहायता करती हैं। मेनग्रोव वनस्पति के कुछ मुख्य उदाहरण हैं : अवीसीनिया की जातियॉ, अमूरा कक्यूलेटा, बुग्विऐरा की जातियां, एक्सीकेरिया आगाल्लोचा, हेरेटिएरा फोमस, कन्डेलिया कन्डेल, फीनिक्स पेल्यूडोसा, रहाइजोफोरा एपीकुलेटा आदि।

गंगा नदी की शैवाल विविधता :–

शैवाल मुख्यतया नदी के जल में अथवा किनारों पर पाये जाने वाले पादपजात हैं। इन्हें ''फाइटोप्लान्कटान'' भी कहा जाता हैं। यह स्वयं पोषी व गंगा परितन्त्र की खाद्य श्रृंखला में मुख्य अवयव हैं। इनमें हरित शैवाल, नीलहरित शैवाल, डाइएटम तथा डेस्मिड आदि प्रमुख हैं।

ऊपरी पट्टी :–

गंगोत्री में ऋषिकेश तक किए गये अध्ययन से पता चलता है कि शीत ऋतु में डाइएटम अधिक संख्या में व क्रमशः हरित शैवाल, नील हरित शैवाल तथा लाल शैवाल आदि मिलते हैं। लगभग 100 शैवाल जातियां संख्यानुसार निम्न क्रम में पाई गई - क्लोरोफीसी> साइनोफीसी> डाइनोफीसी> क्रिप्टोफीसी> यूग्लीनोफीसी> क्राइसोफीसी। हिमालय क्षेत्र में अधिक बहाव व जल की स्वच्छता के कारण अपेक्षाकृत कम संख्या में शैवाल पाये जाते हैं।

मध्य पट्टी :–

मध्य पट्टी के विभिन्न क्षेत्रों में किए गये अध्ययन के फलस्वरूप पाई गई शैवाल जातियों को संख्यानुसार निम्न क्रम में रखा जा सकता है- क्लोरोफीसी, बेसीलेरियोफीसी, साइनोफीसी, डेस्मीडिएसी, ग्लीनोफीसी। इनमें मुख्य वंश

क्लौस्टैरियम, नेवीकुला, एकीनेस्टम, प्रोटोकोकम, एस्टेरियो-नेल्लास, माइक्रोस्पोरा, तथा मेलोसिरा आदि सम्मिलित हैं। संख्या की दृष्टि से क्लौस्टैरियम का बाहुल्य मिलता हैं।

निम्न पट्टी :–

इस क्षेत्र में किये गये अध्यनों से पता चलता है कि यहाँ सर्वाधिक संख्या बैसीलेरियोफीसी की तथा सबसे कम यूग्नीनोफीसी के शैवालों की हैं। एक कोशिय शैवालों में सिम्बैला, मेलोसिरा व साइनेड्रा तथा सूत्रीय शैवालों में स्पाइरोगाइरा तथा औसीलेटोरिया का बाहुल्य पाया गया।

गंगा में पाये जाने वाले शैवालों के कुछ मुख्य कुलों के प्रमुख वंशों का संक्षिप्त विवरण नीचे प्रस्तुत किया जा रहा हैं।

क्लोरोफीसी कुल : इसमें मुख्यतया क्लोरैला, वलोस्टैरियम, कीटोफोरम, वलेडोफोरा, कास्मेरियम, उडोगोनियम, सैनेडेस्मस, सेलेनेस्ट्रम तथा स्पाइरोगाइरा इत्यादि वंशों की विभिन्न जातियां पाई जाति हैं।

साइनोफीसी कुलः यह शैवालों का एक महत्वपूर्ण कुल हैं जिसकी अधिकतर जातियां अधिक प्रदूषण युक्त स्थानों पर मिलती हैं इस कुल के मुख्य वंश हैं : एनाबीना, आर्थोस्पाइरा, केलोथ्रिक्स, ग्लीओकेप्सा, ग्लीओट्रीकिआ, लिम्बिआ, मैरिस्मोपेडिना, माइक्रोसिस्टिस, नौड्यूलेरिया, नौस्टॉक, आसीलेटोरिआ, फौरमीडियम, साइनेकोसिस्टिस आदि।

बैसीलेरियोफीसी कुल : इस कुल के वंशों में निट्रिसआ, नेवीकुला, एगेन्थस, सिम्बैला, गोम्फोनीमा, मिन्थूलेरिआ, मैलोसिरा, कौक्सोनिस, साइनेड्रा आदि हैं।

गंगा नदी की कवक-विविधता :–

गंगा में पाई जाने वाली पादप जातियों के विगलन एवं खनिजीकरण में जलीय व जल से बाहर उपस्थित कवकों की महत्वपूर्ण भूमिका है। विभिन्न वैज्ञानिकों द्वारा गंगा के विभिन्न क्षेत्रों में किए गये अध्ययन के आधार पर अनेकों कवक जातियों का पता लगाया गया हैं व निष्कर्ष निकाला है कि मानसून के समय कवक गतिविधि सर्वाधिक होती हैं तथा सबसे अधिक जातियां जल के धरातल पर मिलती हैं।

घाटें व मल-निकासी के क्षेत्र में पाई गई जीवाणु जातियों में विब्रीओ कालेरी 0-1, नॉन 0-1 विब्रीओ कालेरी, ग्रुप एफ विब्रीओ, एअरोमनोस हाइड्रोपिला, प्लेसिओमोनास शीलगेलाइडिस, साल्मोनैला टाइफी, सा० पैराटाइफी -ए, सा० टाइफीमुरिअम, शीगैला डिसन्टिरियल, सी० बौयडिक, शी० फ्लेक्सनेरी, स्यू० एरूजीनोसा, प्रोटिअस, प्रोवीडेन्सिआ, एसीनीटोबेक्टर, एल्कलीनेस, फीकेलिस, सिट्रोबेक्टर, कलेब्सिएला, एन्टेरोबेकर आदि प्रमुख हैं।

गंगा की निचली पट्टी में पाये जाने वाली जीवाणुओं में इश्चर्शिया कोलाइी के अतिरिक्त साल्मोनैला, शीगैला, स्यूडोमोनांस, प्रोटिअस कलैबिसिऐला, माइक्रोकोकस तथा स्ट्रैप्टोकोकस की उपस्थिति सभी जल-नमूनों में पाई गई।

मध्य गांगेय पट्टी में पाई जाने वाली जीवाणु जातियां हैं :– इश्चर्शिआ कोलाई, एअरोबेक्टर एज्ञरोजेनेस, ए० कलोएसी, साल्मोनैला,

कलेब्सिऐला, प्रोटिअस वल्गेरिस, स्यूडोमोनास एरूजीनोसा, बेसीलमस एन्थ्रेसिस, स्टोफिलोकॅाकस अंरियस, स्ट्रेप्टोकोकस फीकेलिस, माइक्रोकोकास डिपलोकोकस, क्लोस्ट्रीडियम वैल्वी आदि।

गंगा की वानस्पति विविधता का उपरोक्त विवरण यद्यपि विस्तृत हैं किन्तु सम्पूर्ण नहीं। गंगा के परितन्त्र की महत्ता को देखते हुए आवश्यक है कि नदी के दोनों छोरों के लगभग सौ मीटर क्षेत्र तक क्रमिक सर्वेक्षण पर विभिन्न पादप जातियों की प्राकृतिक स्थिति की सही जानकारी प्राप्त की जाय। तभी विश्व के सर्वाधिक महत्वपूर्ण नम भूमि तन्त्रों में से एक इस परितन्त्र की वास्तविक पादप विविधता का सही मूल्यांकन हो सकेगा।

भारत मेरे लिए दुनिया का सबसे प्यारा देश है। इसलिए नहीं कि वह मेरी मातृभूमि है बल्कि इसलिए कि मैंने सबसे ज्यादा अच्छाई इसी में पाई है।

– ''महात्मा गाँधी''

आर्किड

पी० के० सरकार
भारतीय वनस्पति उद्यान, हावड़ा

आर्किड को फूलों कि रानी कहा जाता है। इसके आकार विविधता, रंग और बहार के लिए फूलों की दुनियाँ में इन्हें सबसे उत्तम स्थान दिया गया है। इस कारण यह अनुसंधान का अच्छा विषय भी है। आर्किड का उद्भव 60 और 125 मिलियन वर्ष के बीच में हुआ था किन्तु इसके कोई जीवाश्म आज तक नहीं मिले। ये पौधे दक्षिण अक्षांश 52^0 और उत्तर अक्षांश 72^0 के बीच में मिलते हैं। लगभग 90 प्रतिरात आर्किड पृथ्वी के उष्ण कटिबंध से उपलब्ध होते हैं। ये पेड़ के उपर मिट्टी और पत्थर में, जमीन के नीचे और कीचड़ में भी होते हैं, लेकिन जिधर भी हो इसकी वृद्धि अति मन्द होती है। इसके बीज बहुत छोटे और माप में एक इंच के सौवें भाग के बराबर होते हैं। ऐसा छोटा बीज होने के कारण इसमें खाद्य कम होता है और इसके अंकुरित होने के लिए माइकोशइजा (एक अन्य पादप वर्ग) की आवश्यकता होती है। अधिक माँग के लिए इन पौधों को प्रयोगशाला में भी उगाया जाता है और बड़ी सफलता से इनका औद्योगीकरण हो रहा है। इसके बीज हल्के होते हैं और ये वायु द्वारा वितरित होते हैं।

भारतवर्ष में कम से कम एक हजार प्रकार के आर्किड होते हैं। सबसे उत्तम प्रकार के आर्किड ठन्डे पहाड़ी स्थानों में मिलते हैं।

इन्हे संरक्षित करने के लिए सन 1973 में पूरे आर्किड कुल को कन्वेशंन ऑन इन्टरनेशनल ट्रेड ऑफ इंडेंजर्ड स्पिसिश ऑफ फ्लोरा एंडफौंना की सूची के अन्तर्गत लाया गया है।

प्रोटीन व विटामिनों का अक्षय स्त्रोत : स्पाईरूलिना

एस० एल० गुप्त
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

पादप जगत जहां एक ओर विश्व की खाद्य समस्या को सुलझाने में लगा हुआ है, वहीं दूसरी ओर कुपोषण की समस्या को भी दूर करने में अहम् भूमिका निभाने में व्यस्त है। प्रोटीन व विटामिनों से युक्त एक सस्ता एवं सुगम स्त्रोत सुनोवा स्पाईरूलिना के रूप में भारतीय औषधि बाजार में प्रकट हुआ है जो दिनों दिन लोकप्रिय हो रहा है।

पादप समूह के अुपष्पी वर्ग के अन्तर्गत शैवालों (जिसे साधारण बोलचाल की भाषा में काई कहा जाता है) में से एक समूह नील हरित शैवालों (ब्लू-ग्रीन एल्गी) का है। ये अन्य शैवालों की अपेक्षा जीवाणुओं (बैक्टीरिया) से काफी समानता रखते हैं। ये एककोशीय, बहुकोशीय अथवा तंतुनामा होते हैं। इन्हीं तन्तुनुमा शैवालों में से एक स्पाईरूलिना है।

तंतुनुमा बहुकोशिय नील हरित शैवाल 'स्पाईरूलिना' उन तालाबो और लवणीय झीलों में बहुतायत में मिलता है जो अधिक क्षारीय और घुलनशील सोडियम लवण जैसे कार्बोनेट, बाईकार्वोनेट, क्लोराइड और सल्फेट से युक्त होते हैं। प्राचीन काल से ही मध्य अफ्रीका स्थित चाड झील के आसपास रहने वाली कानेम जनजाति का यह एक प्रमुख आहार रहा है। अब भी उस क्षेत्र में स्पाईरूलिना का संकलन प्राचीन विधि से होता है। संकलन के पश्चात उसे धूप में सुखकर 'डाई' नाम से बाजार में खाने हेतु बिक्री की जाती है। मेक्सिको में टेक्सकोको झील के आसपास रहनेवाली एजटेक्स नामक जनजाति शुरू से ही इसका उपयोग भोजन के रूप में करती रही है।

प्राकृतिक रूप से पाई जानेवाली स्पाईरूलिना प्लेटेन्सिस में रासायनिक रूप से प्रोटीन की मात्रा 40-45 प्रतिशत तक होती है जो प्रयोग शालाओं मे खनिज लवणों के साथ कृत्रिम संवर्धन से 70 प्रतिशत तक बढ़ जाती है। उसके अलावा उस प्रोटीन में शरीर की वृद्धि के लिए आवश्यक सभी अमीनों अम्ल, पोषक लाइसिन और ट्रिप्टोफान भी उचित मात्रा में मौजूद रहते है। पादप उत्पाद में सामान्यतया न पाई जाने वाली विटामिन बि-12 से भी यह शैवाल युक्त है। उसके अतिरिक्त उचित मात्रा में चर्बी, कार्बोहाईड्रेड और खनिज पदार्थ भी उसमें मिलते हैं। क्लोरोफिल 'ए' बीटाकैरोटिन, जैन्थोफिल, और दो प्रकार के बिलीप्रोटीन सी फाइकोसाएनिन और एलोफाईकोसाएनिन भी उसमें उचित मात्रा में मिलते हैं।

इस शैवाल की पोषकता का एक बड़ा कारण उसमें कम मात्रा (4% लगभग) में पाया जानेवाला न्यूक्लिक एसिड है जबकि जीवाणु (बैक्टीरिया) और यीस्ट में यह मात्रा अधिक लगभग 10-20 प्रतिशत तक होती है। उससे स्पाईरूलिना काफी हद तक हानिरहित है। हृदयरोगियों के लिए यह एक वरदान है क्योंकि इसकी दीवालों में पाई जानेवाली लिपिड असंतृप्त फैटी एसिड - म्यूकोपेप्टाइड की बनी होती है जो आसानी से पच जाती है। अन्य शैवालों विशेषतया हरे शैवालों में उसकी जगह सेलुलोज पाया जाती है जो पाचन में कठिनाई पैदा करता है। इन्हीं सब कारणों से स्पाईरूलिना एक सफल भोजन स्रोत के साफ-साफ पोषक तत्वों के लिए भी पादप एवं जन्तु जगत दोनों में तेजी से लोकप्रिय हो रहा है। आज आवश्यकता इस बात की है कि उसे संचार माध्यमों के द्वारा बड़े पैमाने पर उगाने की विधि, संग्रहण एवं प्रयोग विधि बताई जाये जिससे इस प्राकृतिक सम्पदा का दोहन बड़े पैमाने पर करके कुपोषण की गम्भीर समस्या से छुटकारा पाने में सफलता मिल सके।

कुपित मनुष्य नहीं जानता कि क्या कथनीय है और क्या अकथनीय। क्रोधी के लिए कुछ अकार्य नहीं और न कुछ अकथनीय ही है।

– ''सुन्दर काण्ड **55/51**, *वाल्मीकि रामायण'*

''चन्दन'' - एक पावन बहूपयोगी वनस्पति

एस० के० श्रीवास्तव, आर० डी० दीक्षित एवं बी० के० सिन्हा
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

''चन्दन'' **सैन्टेलम एल्बम** - भारतीय मूल का वृक्ष हैं जो अपनी मनमोहन सुगन्ध के कारण विदेशों में भी लोकप्रिय है। यह भारत के प्रायद्वीप क्षेत्र में मिलता है किन्तु कुछ लोगों का मानना है कि चन्दन भारतीय नं होकर विदेशी वनस्पति है जो टिमोर इण्डोनेशिया से यहां आयी है। चन्दन का वर्णन भारतीय पौराणिक महाकाव्यों जैसे रामायण एवं महाभारत में भी किया गया है। प्राचीन साहित्य जैसे मिलिन्द पण्हो (200 बी० सी०), पातंजलि महाभाष्य (100 बी० सी०), धम्मपद जातक अंगुटाश एवं विनय पिटक (400-300 बी० सी०) भी इसका उल्लेख मिलता है।

सन्त अंसतन्हि के असि करनी,
जिमि कुठार चन्दन आचरनी।
काटइ परसुमलय सुन भाई,
निज गुन देइ सुगन्ध बसाई।।

भारतीय संस्कृति एवं हिन्दू धर्म में चन्दन को जितनी प्रधानता दी गयी है उतनी किसी भी अन्य वृक्ष को नहीं दी गयी है, क्योकि चन्दन ही निःस्वार्थ भाव से सदैव अपनी शीतलता एवं मनमोहक सुगंध बिखेरता है। इसके महत्व को इसी से आंका जा सकता है कि बिना इसके, पूजा अर्चना ही अपूर्ण है। मूर्ति पूजा में स्नान उपरान्त मस्तक पर चन्दन का लेपन भक्त एवं भगवान दोनों को लगता है।

श्री खण्ड चन्दन दिव्य गन्धाक्ष्यं सुमनोहरम्।
विलेपन सुर श्रेष्ठ चन्दनं प्रति-गृह्यताम्।।

'चन्दन' एक मध्यम ऊंचाई का वृक्ष है जो आमतौर पर भारतीय प्रायद्वीप के शुष्क स्थानों पर मिलता है जिसका विस्तारण विन्ध्यन के पर्वतीय श्रृखलाओं से दक्षिण प्रायद्वीप की ओर हुआ है। मुख्य क्षेत्र हैं - मैसूर, तमिलनाडु आदि किन्तु राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, उड़ीसा में इसको बहुत तादाद में लगाया गया है जो लगभग प्राकृतिक वनस्पति का स्थान ले चुका है। मध्य प्रदेश में तो इसका संरक्षण भी हो रहा है और उस क्षेत्र को ''चन्दन सम्पदा'' क्षेत्र घोषित कर दिया है। विश्व में चन्दन की लगभग 25 (पचीस) प्रजातियां पायी जाती हैं जिसमें से भारतवर्ष में केवल एक सेन्टेलम अलबम ही पायी जाती है।

सामान्यतः समतल अथवा हल्की ढलान पर स्थित वनों में चन्दन वृक्ष प्राकृतिक रूप से पाये जाते हैं। सागोन (टेक्टोना ग्रेन्डिस), सलइ (बासवीलिया सिर्राटा), महुआ (मनिलकारा लिटटोरेलिस), सिरिस (एलबीजिया लिबेक), सेमल (बाम्बाक्स मालाबारिका), इमली (टैमिरंडस इन्डिका), तेंदु (डायोस्पेरोस मिलैनोजाइलान),

अमलतास, बेर, बांस व करौंदा इत्यादि के वृक्ष इसके साथ पाये जाते हैं।

यह आंशिक परजीवी पौधा है जो एक ओर अपनी पत्तियों से सूर्य के प्रकाश में स्वतः अपना भोजन ग्रहण करता है वहीं दूसरी ओर अपनी जड़ों के माध्यम से दूसरे वृक्षों से भी भोजन प्राप्त करता है। इसी गुण के कारण न तो यह वृक्ष खुले क्षेत्रों में स्वतन्त्र रूप से पाया जाता है और न ही अकेले रोपित किया जाता है। रोपानियों में इसके प्रतिरोपण से पूर्व थैलियों में तुअर अथवा सांवरी के पौधे इसकी सहायता हेतु उगाये जाते हैं तथा उगाये गये पौधों को अन्य वृक्षों के पास अथवा लेन्टाना की झाड़ियों के मध्य रोपित किया जाता है। शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में इसी गुण के कारण चन्दन का पौधा खेतों की बागुड़ में अन्य झाड़ियों के साथ ही देखने को मिलता है। चन्दन छोटी से मध्यम ऊँचाई तक का सदाबहार वृक्ष होता है। इसकी शाखाएं आमतौर पर झुकी तथा इसकी छाल कत्थई काले रंग की खुरदरी होती है जिस पर खड़ी दरारें दिखती हैं। इसकी जड़ें गहरी व कम फैलने वाली होती है। पत्तियाँ अण्डाकार, कम चौड़ी तथा 3 से 7 से० मी० लम्बी होती हैं जिनकी सतह एक ओर चमकीली हरी तथा दूसरी ओर भूरे रंग की होती है। फूल छोटे बैगनी से काले होते हैं तथा फल गोल, बैगनी रंग के होते हैं। चन्दन की लकड़ी कड़ी एवं दृढ़ होती है।

चन्दन वृक्ष की भीतरी कड़ी काष्ठ (हार्ड वुड) से ही सर्वाधिक कीमती चन्दन तेल निकलता है। इसी तेल के कारण चन्दन की लकड़ी में सुगन्ध होती है तथा इमारती लकड़ी में सबसे महंगी तथा तौलकर बिकने वाली एकमात्र लकड़ी इसी की होती है।

चन्दन की लकड़ी बहूपयोगी है। प्रधानतः इससे प्राप्त तेल तथा उच्च श्रेणी की काष्ठ के निर्यात से विदेशी मुद्रा तथा देश में बिक्री से राजस्व की प्राप्ति होती है। चन्दन की लकड़ी से विशेषकर हाथी दाँत का सम्मिश्रण कर उससे मूल्यवान कलात्मक वस्तुओं, घरेलू सजावटी सामान तथा खिलौनों का निर्माण किया जाता है। पूजा अर्चना में भी इसका उपयोग किया जाता है। हवन इत्यादि में चन्दन के बुरादे का उपयोग किया जाता है तथा अगरबत्तियां बनाई जाती हैं। दाह-संस्कार में भी चन्दन की लकड़ी का उपयोग किया जाता है। चन्दन के बुरादे के छोटे-छोटे पैकेट कपड़े की पेटियों में रखने से कपड़े सुगन्धित रहते हैं।

औषधि में उपयोग : चन्दन की कड़ी काष्ठ से मिलने वाले सुगन्धित तेल में अनेकों औषधि गुण पाये जाते हैं। ब्रोंकाइटिस, बुखार, त्वचीय रोग, दस्त, पेचिस तथा पेशाब सम्बन्धी अवरोधों के निदान में चन्दन (सन्दल) तेल से कई औषधियां बनायी जाती हैं। शरबत के रूप में इसका प्रयोग शक्ति, स्फूर्ति एवं शीतलता प्रदान करता है। चन्दन एवं कपूर को गुलाब जल में घिसकर नाक में टपकाने से सिरदर्द का निदान होता है। चन्दन का लेप सूजन को कम करता है तथा ज्वर के समय इसको माथे पर लगाने से आराम मिलता है।

इसके अतिरिक्त चन्दन का उपयोग सौन्दर्य प्रसाधन सामग्रियों, सुगन्धित साबुनों, अगरबत्तियों के निर्माण में भी किया जाता है। चन्दन का लेप उबटन के रूप में मस्तिष्क को ठंडा रखने हेतु किया जाता है। कीटनाशी एवं मनमोहक सुगन्ध गुणों के कारण चन्दन (संदल) पर्यावरण को स्वस्थ रखता है।

दक्षिण भारत के कर्नाटक व तमिलनाडु राज्यों में चन्दन बहुतायत में होता है और यहाँ इस कीमती वृक्ष की तस्करी भी काफी चर्चित है। वन विभाग ने इस तस्करी को रोकने के लिए अनेकों कदम उठाये हैं। इन वृक्षों का विभागीय रूप से वानिकी विज्ञान के आधार पर दोहन कड़े नियन्त्रण में किया जाता है। दोहन हेतु केवल मृत एवं मृतप्राय वृक्षों का ही चयन किया जाता है। कटाई से पूर्व वृक्ष की लम्बाई व गोलाई का नाप किया जाता है। जमीन के ऊपर से काटे गये तने एवं शाखाओं तथा जड़ भाग के टुकड़े कर उन पर इस क्रम में क्रम संख्या अंकित की जाती है कि वन से परिवहन उपरान्त गोदाम पहुँचने में काटे गये सभी टुकड़ों का क्रमानुसार जमाकर पुनः वृक्ष का पूर्व आकार निर्मित किया जा सके। इस प्रकार चन्दन के वृक्षों की सही मात्रा अपने वांछित स्थानों में पहुँच जाती है।

अनेकों राज्यों में भारत सरकार व राज्य वन विभाग द्वारा चन्दन का संरक्षण किया जा रहा है। मध्य प्रदेश के कई जिलों के वनों तथा निजी भूमियों में जहाँ तहाँ छोटे-छोटे भूखण्डों में इसके वृक्ष पाये जाते हैं। लोकप्रियता के कारण शहरी क्षेत्रों के उद्यानों एवं आवासीय भवनों के प्रांगणों में भी चन्दन के पेड़ लगाये जाते हैं।

मध्य प्रदेश का चन्दन बाग - जैविकी उत्तप्त स्थल

मध्य प्रदेश राज्य में पाये जाने वाले घने वनों में मिलने वाली वनस्पति विविधता एवं वहाँ पाई जाने वाली प्राकृतिक जेनिटिक सम्पदा के आधार पर कई वन क्षेत्रों को ''जैविकी उत्तप्त स्थल'' "Biological Hot Spots" माना गया है। इन्हीं में से एक है सिवनी का चन्दन बाग।

सन् 1880 में सिवनी के दक्षिण वन प्रभाग में चन्दन का वृक्षारोपण किया गया था। लगभग सौ वर्षों में आज सागौन के वनों में चन्दन के वृक्ष अधोवन (निचली सतह) में बहुत मात्रा में लगे हुए हैं और लगातार उनका प्राकृतिक पुनर्जनन हो रहा है। इस घनी चन्दन सम्पदा का संरक्षण करके उस क्षेत्र को ''चन्दन स्टेट'' घोषित किया गया है। और इस अनोखे चन्दन आरक्षित क्षेत्र को चन्दन का जीन अभयारण्य क्षेत्र माना जाता है।

चन्दन महत्वपूर्ण, मूल्यवान एवं बहुपयोगी वृक्ष है जिसके सम्बन्ध में ''चन्दन विष व्यापत नहीं लपटे रहत भुजंग'' मात्र एक भ्रान्ति है।

वानस्पतिक उद्यान : पौध संरक्षण में सहायक महत्वपूर्ण कारक

नीरज श्रीवास्तव एवं पी० एस० एन० राव
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पोर्ट ब्लेयर

जनसंख्या विस्फोट, जंगलों की अंधा धुंध कटाई, बिना योजना अव्यवस्थित विकास, कृषि भूमि का अत्याधिक विस्तार आदि कुछ ऐसे कारक है जिनके कारण पौधों की विभिन्न प्रजातियों के अस्तित्व को खतरा पैदा हो गया है। एक सर्वेक्षण के अनुसार पौधों की लगभग 60,000 प्रजातियां इस समय विलुप्त होने के कगार पर हैं। यह संख्या विश्व की कुल पौध प्रजातियों का लगभग एक चौथाई है। इन परिस्थितियों में इन प्रजातियों के संरक्षण में वानस्पतिक उद्यान अति महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। पौधों के इस विनाश के कारण पृथ्वी पर मानव जीवन भी खतरे में पड़ गया है। सामान्य मनुष्य के लिये वे ही पौधे महत्वपूर्ण हैं जो हमें भोजन देते हैं। परन्तु बहुत से ऐसे जंगली पौधे भी हैं जिनसे हमें भोजन के अतिरिक्त ईंधन, कपड़े, दवाइयां आदि प्राप्त होते हैं। भारत जैसे विकाशील देश में बड़ी संख्या में लोग जंगली पौधों द्वारा बीमारियों के पारम्परिक इलाज में विश्वास रखते हैं। पृथ्वी के पर्यावरण संतुलन और इसके इकोसिस्टम को बनाए रखने में भी पौधों का अति महत्व है। ये पौधे व जंगल अनेक जन्तुओं के प्राकृतिक निवास स्थान भी होते हैं।

पूरे विश्व में लगभग 1600 वानस्पतिक उद्यान हैं जिनमें पौधों की हजारों प्रजातियां संरक्षित हैं। वनस्पति विविधता की हानि के वर्तमान दौर में इन उद्यानों का महत्व और बढ़ जाता है। जंगली पौधों पर शोध एवं इनके संरक्षण के क्षेत्र में ये वानस्पतिक उद्यान एक अग्रणी संस्था के रूप में कार्य कर रहे हैं। इनके महत्व को देखते हुए अनेक नए वानस्पतिक उद्यान इस प्रकार बनाए और विकसित किए जा रहे हैं जिससे कि वे पौध संरक्षण, अध्ययन एवं उनके शिक्षा के केन्द्र के रूप में कार्य कर सकें, विशेषकर उन पौधों के जो किसी क्षेत्र विशेष में ही पाए जाते हैं।

ऐसे सार्वजनिक उद्यान जिनमें पौधों की विभिन्न प्रजातियां उनके अध्ययन, वैज्ञानिक शोध, संरक्षण व शिक्षा के लिए एकत्रित की जाती है, ''वानस्पतिक उद्यान'' कहलाते हैं। छोटे से बड़े तक सभी प्रकार के वानस्पतिक उद्यानों का सर्वप्रथम और सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य है, ''विश्व की वानस्पति विविधता का संरक्षण''।

अण्डमान एवं निकोबार द्वीप समूह में छोटे बड़े लगभग 572 द्वीप हैं, जिनका कुल क्षेत्रफल

8293 वर्ग किमी० है। इसका लगभग 86% क्षेत्र वनों से आच्छादित है जिसके कारण इन द्वीपों को ''बंगाल की खाड़ी का पन्ना'' (Green Emeralds of Bay of Bengal) कहते हैं। अत्याधिक जैविक विविधता वाले इन ट्रॉपिकल वनों में आवृतबीजी पौधों (Angiospermic Plants) की 2000 से अधिक प्रजातियां पाई जाती हैं। इसके अतिरिक्त क्रिप्टोगैम वर्ग के पौधों की विभिन्न प्रजातियाँ भी प्रचुर मात्रा में पाई जाती हैं। इन द्वीपों के फ्लोरा की एक बड़ी विशेषता यह है कि आवृतबीजी वर्ग के कुल पौधों की संख्या का लगभग 14% इन्डेमिक है और लगभग 30% इन द्वीपों को छोड़कर पूरे भारतवर्ष में नहीं पाए जाते, वरन् पड़ोसी देशों जैसे मलेशिया, जावा, सुमात्रा, थाईलैण्ड और बर्मा में पाए जाते हैं। इस प्रकार इनका पादप भूगोलीय महत्व हैं। केवल 8293 वर्ग किमी० के क्षेत्रफल वाले इन द्वीपों में इतनी अधिक जैविक विविधता का पाया जाना अत्यन्त महत्वपूर्ण है जिसका संरक्षण आवश्यक है।

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण व अण्डमान एवं निकोबार क्षेत्र ने यहां की दुर्लभ जैविक सम्पदा के संरक्षण हेतु पोर्ट ब्लेयर से लगभग 16 किमी० की दूरी पर स्थित धनिखारी क्षेत्र में ''एक्सपेरीमेंटल गार्डेन एवं आर्बोरेटम'' की स्थापना की है जहां पर लगभग 500 पौधों की प्रजातियां संरक्षित हैं, जिनमें ऑर्किड, पाम, नटमेग एवं कुछ अन्य महत्वपूर्ण प्रजातियां हैं। भा० व० स० के वैज्ञानिकों द्वारा अण्डमान एवं निकोबार द्वीपों का सर्वेक्षण कर कुछ अन्य पौधों की दुर्लभ प्रजातियों को भी धनिखारी उद्यान में प्रतिरोपित कर इन दुर्लभ प्रजातियों के जननद्रव्य को संरक्षित किया जा रहा हैं।

विश्व के अनेक देशों में प्रजातियों के संरक्षण की योजना के अन्तर्गत् वानस्पतिक उद्यानों द्वारा पौधों को जंगलों में प्रतिरोपित कर उन्हें प्राकृतिक रूप से बढ़ने का अवसर दिया जा रहा है तथा उनकी वृद्धि में सहायक पर्यावरणीय कारकों को खोजा जाता है। लोगों को पर्यावरण से सम्बन्धित शिक्षा देकर उनमें पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरूकता पैदा की जाती है। ध्यान देने की बात है कि विश्व स्तर पर प्रतिवर्ष लगभग 15 करोड़ लोग वानस्पतिक उद्यानों को देखने व घूमने आते हैं। आशा है कि भा० व० सं०, अण्डमान-निकोबार क्षेत्र का धनिखारी वानस्पतिक उद्यान भविष्य में और अधिक एवं उन्नत सुविधाओं से युक्त होकर पौधों की प्रजातियों के संरक्षण में और भी अधिक योगदान देगा।

स्कैनिंग इलेक्ट्रान माइक्रोस्कोप (सेम) द्वारा पौधों की पहचान

देवयानी बसु
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कलकत्ता

काफी समय से हम पौधों की पहचान के लिए सूक्षमदर्शी यन्त्र का उपयोग कर रहे हैं। परन्तु विज्ञान की उत्तरोत्तर प्रगति के इस युग में पहचान को अधिक सक्षम बनाने के लिए सेम (S.E.M.) का आविष्कार किया है।

इस सूक्षमदर्शी का प्रयोग पौधों की बाह्य मोर्फोलॉजी के अध्ययन में अत्यन्त सहायक सिद्ध हुआ है। एलिएग्नेसी कुल अपने सन्देहास्पद फाइलोजेनेटिक सम्बन्ध के कारण और पत्तों व फलों के निचले भाग में चाँदी के समान चमकीली परत का पाया जाना टेक्सोनामिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। सेम द्वारा लिये गये चित्र से यह विदित हुआ है कि छिलके एवं रोयों से ही यह चमकीली परत बनी है।

प्रयोग विधि : एलिएग्नेस इंडिका के सूखे पत्तों को उपर एवं नीचे से 1-2 मी० मी० की लम्बाई के टुकड़ों में काट लिया जाता हैं और इन्हें कैल्सियम हाइड्रोक्साइड युक्त डेसिकेटर में सुखाया जाता है। इसके पश्चात इन टुकड़ों पर पोलारन उपकरण द्वारा डेढ़ मिनट तक सोने का एक विशेष लेप किया जाता है। इसके बाद इसे सेम से जाँचा जाता है और अपेक्षित चित्र लिये जाते हैं।

सेम द्वारा पौधों के विभिन्न भागों की बाह्य सतह का अत्यन्त सूक्ष्म निरीक्षण जो साधारण प्रचलित सूक्ष्मदर्शी से संभव नहीं है, किया जा सकता है जो अनेकों टैक्सोनामिक जटिलताओं को सुलझाने में अत्यन्त प्रभावी सिद्ध हुआ है। उष्ण और समशीतोष्ण क्षेत्र की झाड़ियों और छोटे वृक्षों की कोमल शाखाओं और पत्तों की ये स्टीलेट और पेल्टेट रोयें प्रतिकूल मौसम से रक्षा करते हैं। इनका परिमाण बहुत अधिक होता है। इसलिए इसकी पत्तियाँ व शाखाएँ चाँदी व बादामी रंग की नजर आती है।

उपरोक्त अध्ययन से पता चलता है कि बाइनाकुलर सूक्ष्मदर्शी यन्त्र से रोंये और बनावट तो देखे जा सकते हैं परन्तु सेम (S.E.M.) अध्ययन द्वारा रोयें और उनकी बनावट के अन्तर अधिक स्पष्ट होते हैं।

गोखरू (कॉर्न) के देशी उपचार में सहायक वनस्पतियां

मार्सेल तिग्गा, एवं नीरज श्रीवास्तव,
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पोर्ट ब्लेयर

अण्डमान-निकोबार द्वीप समूह की कुछ जन-जातियों के अध्ययन से यह तथ्य सामने आया है कि वे गोखरू (कॉर्न) जैसी पीड़ा दायक व्यथा का इलाज देशी विधि से पीपल एवं मदार की सहायता से करते हैं। प्रस्तुत लेख में जन-जातियों द्वारा पीढ़ियों से प्रयोग में लाए गए इसी देशी इलाज का वर्णन है।

बंगाल की खाड़ी में बिखरे हुए लगभग 572 बड़े एवं छोटे द्वीप है जिनसे मिलकर अण्डमान एवं निकोबार द्वीप समूह का निर्माण हुआ है। इन द्वीप समूहों में मुख्यतः छः आदिवासी जन-जातियां पाई जाती हैं– ग्रेट अण्डमानी, ओंगी, जरावा, सेन्टनलीज, शोम्पेन एवं निकोबारी। परन्तु मुख्य भूमि से आकर भी बहुत सी जन-जातियां यहां स्थाई रूप से बस गई हैं और इन द्वीप समूहों का ही एक हिस्सा हो गई हैं। इन्हीं जन-जातियों में छोटा नागपुर के कुछ आदिवासी जैसे-उराँव, खड़िया तथा मुण्डा आदि हैं जो ''रांची वाला'' के नाम से जाने जाते हैं। दूर जंगलों में निवास करने एवं आधुनिक संसाधनों की कमी के कारण ये जन-जातियां उपचार के लिए अस्पताल कम ही पहुंच पाती हैं और वैद्य या हकीम के देशी उपचार पर ही निर्भर रहती हैं। देशी उपचार द्वारा अनेक असाध्य रोगों का उपचार होते हुए देखा गया है।

इन्हीं पीड़ा दायक और असाध्य रोगों और व्यथाओं में से एक है गोखरू या कॉर्न (Corn) जिसे ये जन-जातियां ''मच्छरी आँइख'' के नाम से जानती हैं। यह रोग अधिकतर पैरों के तलवों में होता है जिससे मनुष्य के चलने में अत्यधिक पीड़ा होती है। इससे पीड़ित मनुष्य के पैर के तलवों में उमरी हुई गांठ के समान संरचना बन जाती है जो चलने में बहुत पीड़ा देती है। अस्पतालों में इसका एकमात्र इलाज शल्य क्रिया (आँपरेशन) है जिसमें इसे काटकर निकाल देते हैं परन्तु कुछ समय पश्चात् यह पुनः उत्पन्न हो जाता है।

अण्डमान-निकोबार द्वीप समूह की कुछ जन-जातियों के अध्ययन से यह तथ्य सामने आया है कि वे गोखरू (कॉर्न) जैसी पीड़ा दायक व्यथा का इलाज देशी विधि से पीपल (Ficus religiosa L.) एवं मदार (Calotropis gigantea (L.) R. Br.) की सहायता से करते हैं। यह उपचार काफी हद तक सफल भी है। इस विधि से इलाज में पीपल की लकड़ी को जलाकर उसकी राख बना लेते हैं। गोखस (कॉर्न) को तेज धार वाले ब्लेड से धीरे-धीरे

काटते हैं। जब रक्त स्त्राव होने लगे तो पीपल की राख को कटे स्थान पर भर देते हैं। 10-12 घंटो को पश्चात् कटे हुए कॉर्न के ऊपर कांटे जैसी संरचना उमर आती है जिसे चिमटी की सहायता से निकाल देते हैं। अब मदार के गाढ़े सफेद दूध (Latex) को घाव पर लगा देते हैं। कुछ ही घंटो पश्चात् आराम मिलने लगता है और चलने में पीड़ा क़म होने लगती है। जन-जातीय लोगों ने बताया कि पीपल की राख से कॉर्न वाले स्थान के कांटे शिथिल एवं मुलायम हो जाते हैं तथा चिमटी से कांटे को निकालने में पीड़ा नहीं होती हैं। मदार के दूध में कुछ औषधीय गुण होते हैं जो कॉर्न को पूर्णतया ठीक कर देते हैं। मदार के दूध को ये जन-जातियां सांप, बिच्छू, कन खजूरा और जंगली चूहे के विष को मारने में औषधि के रूप में भी प्रयोग करती हैं।

अण्डमान-निकोबार की कुछ अन्य जन-जातियां गोखरू (कॉर्न) के इलाज में केकड़े की चर्बी का भी प्रयोग करती हैं। केकड़े के कठोर कवच (Shell) को हटाकर अन्दर के पीले द्रव्य को कॉर्न के कटे हुए स्थान पर भर देते हैं। परन्तु जन-जातियों ने बताया कि केकड़े की चर्बी द्वारा इलाज के पश्चात् कभी-कभी कॉर्न पुनः उमर जाता है। परन्तु पीपल की राख व मदार के दूध द्वारा किया गया इलाज शत-प्रतिशत सफल होता है।

उपरोक्त तथ्य जन-जातियों के व्यवहारिक अध्ययन का परिणाम है और इस चिकित्सा पद्धति के पीछे छुपे हुए वैज्ञानिक कारण का पता लगाना अभी बाकी है। वैज्ञानिकों एवं औषधि शोध कर्ताओं के लिए यह एक महत्वपूर्ण विषय है।

जैसे विद्या का फल ज्ञान और विनय है, लक्ष्मी (धन) का फल यज्ञ तथा दान करना है। बल का फल सज्जनों की रक्षा करना है।

– ''शुक्रनीति''

बोरहाविया डिफ्यूजा, पुर्ननवा एक उपयोगी, औषधीय पौधा

सुख सागर
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

बोरहाविया डिफ्यूजा-पुनर्नवा एक उपयोगी वनस्पति है जो आर्जीमोन के बीज को सरसों में मिलावट से फैले ड्राप्सी रोग के लिए वरदान साबित हो सकती है।

पुनर्नवा : यह कुँओं, तालाबों जहाँ कंकरीली पथरीली धरती तथा बाग बगीचों आदि में पाया जाता है। इस के पौधे वर्षा प्रारम्भ होने के बाद ही उग आते हैं और जमीन पर इधर उधर अपना स्थान बना लेते हैं। गर्मियों में यह प्रायः सूख जाते हैं।

बेलनुमा इस पौधे की लम्बाई डेढ़ फुट तक देखी जाती है। इसकी शाखायें कोमल, कई प्रशाखएं से युक्त होती है, पत्तियाँ मांसल चौड़ी लट्वाकार होती है। यह शाखाओं पर नीचे ऊपर तिरछी लगी होती हैं ऊपर वाली पत्ती प्रायः नीचे वाली पत्ती से बड़ी होती है यह प्रायः 3/4 से एक इन्च तक लम्बी व 3/4 इन्च तक चौड़ी होती है।

पुनर्नवा के फूल छोटे पत्र कोणों में स्थित तथा श्वेत अथवा गुलाबी बैगनी होते हैं इसलिए पुनर्नवा की दो किस्में मानी जाती है। इसके फूल गुच्छों में होते हैं और फल छोटे होते हैं तथा उनमें चौलाई की तरह के बीज रहते हैं जो काले रंग के होते हैं।

विविध नाम :– संस्कृत-पुनर्नवा, सोथछनी, वृश्चीर आदि। हिन्दी - गदापुरैना, गदह पूरन, विषखपरा ठीकरी, पंजाबी-इटसिट। लैटिन – बोरहाविया डिफ्यूजा।

पुनर्नवा की एक सफेद जाति भी होती है जो गांवों में विषखपरा या पथरी के नाम से बहुत प्रसिद्ध है। इन दोनों प्रकार के पुनर्नवा में समान औषधीय गुण होते हैं।

उपयोगी अंग : पुनर्नवा की जड़ या पंचाग औषधीय कार्यों में प्रयुक्त होती है।

संग्रह एवं संरक्षण :- इसका पंचांग शीत ऋतु के अंतिम चरण में लेकर सुखाकर बन्द डिब्बों में रखना ठीक होता हैं। ठीक प्रकार से रखने पर यह 6 माह से 1 वर्ष तक गुणप्रद बना रहता है।

गुणधर्म :– पुनर्नवा मधुर तिक्त कषाय एवं रूक्ष होता है। यह शोधहारी तखा रक्त वर्धक गुणों से परिपूर्ण होता है तथा ज्वर नाशक विषहर आदि इसके विशेष गुण हैं

परन्तु अधिक मात्रा में ले लेने से वामक. होता है। इसे रसायन भी माना जा सकता है क्योंकि यह हृदय के लिए भी हितकर है।

प्रयोग :– पुनर्नवा के प्रयोग से मूत्र की मात्रा में पर्याप्त वृद्धि होती है जिससे हृदय कार्य व्यवस्थित हो जाता है एवं धमनियों में रक्त संचरण बढ़ जाता है। फलतः शोथ दूर हो जाता है। इसी कारण यह आर्जीमोन (मखार) के विष को शरीर से बाहर निकाल कर शोथ दूर कर सकता है जो ड्राप्सी रोग में हो जाता है।

उपयोग :– पुनर्नवा का पंचाग 25-40 ग्राम लेकर आठ गुणे जल में मिलाकर पकाएं जब चौथाई भाग बचे तो उतार कर छान लें तथा इसमें दो चाय के चम्मच बराबर शहद मिलाकर दो मात्राएं करें और दिन में दो बार (प्रातः व सायंकाल) पिलाएं।

या

पुनर्नवा की जड़ 10 ग्राम लेकर लगभग 100 ग्राम जल में पकाएं, 1/4 पानी शेष रहने पर 1-2 ग्राम सोंठ का चूर्ण मिलाकर इसे प्रातः काल पिलाएं। इस प्रकार इतना ही सायंकाल भी पिलाएं। यह आर्जीमोन के विष द्वारा आये शोथ में अत्यन्त लाभदायक सिद्ध होता है।

विद्वानों के मुख से सहसा बातें बाहर नहीं निकलती और निकली ही तो हाथी के दाँत की भाँति कभी परिवर्तित नहीं होती।

– ''भामिनी विलास''

पारम्परिक औषधि वनस्पति ''मेंहदी''

विपिन कुमार सिन्हा एवं सुनील कुमार श्रीवास्तव
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

मेंहदी (लासोनिया इनरमिस लि०) लाइथरेसी कुल का पौधा है जिसकी विश्व भर में केवल एक ही प्रजाति पायी जाती है। यह मूलतः अरब एवं परसिया की एक बहुपयोगी वनस्पति है तथा आम तौर पर यह उषणकटिबंधीय क्षेत्रों में मिलती है। भारत में इसकी खेती कई राज्यों जैसे हरियाणा, गुजरात, मध्य प्रदेश, राजस्थान एवं उत्तर प्रदेश में होती है। इसकी उपयोगिता को देखते हुए इसे शहरों एवं गांव में झाडी के रूप में भी लगाया जाता है।

उर्दू में ''हिना'', तमिल में ''मरूथनीं'', कन्नड़ में ''गोरान्ती'' तथा संस्कृत भाष में ''रजक'' के नाम से प्रसिद्ध मेहंदी एक महत्वपूर्ण प्राकृतिक सौन्दर्य प्रसाधन है। 'मेंहदी लगना' विवाह होने का द्योतक है। इसका प्रयोग सभी धर्म, सम्प्रदाय व जातियों के बीच समान रूप से प्रचलित है। आम तौर पर मेंहदी की पत्तियाँ को पीस कर उसके लेप से नारी अपने हाथों एवं पैरों पर विभिन्न प्रकार की आकृति देकर सुसज्जित करती हैं। प्रमुखतः इसका लेप व घोल हथेली को रंगने में प्रयोग किया जाता है।

वनस्पति विवरण : मेंहदी का पौधा मध्यम ऊँचाई का लगभग 2-3 मी० तक ऊँचा होता है। इसकी शाखाओं पर कांटे होते हैं। इसकी पत्तियों विपरीत क्रम में लगी होती है। इसमें फूल गुलाबी व सफेद रंग के होते हैं जिसमें सुन्ध होती है जो शाखाओं के शिखर पर पैनिकिल्ड साइम के क्रम में लगे होते हैं। इसके फल छोटे लाल रंग के गोलाकार होते हैं जो हाइपैन्थिम से ढके होते हैं। फलों के ऊपर के भाग में सदा लगा रहने वाला स्त्रीकेसर (स्टाइल) विद्यमान रहता है। एक फल में बीजों की संख्या अनगिनत होती है। आमतौर पर मेंहदी के पुष्प तथा फल निकलने का समय अप्रैल से अगस्त माह में होता है।

मेंहदी की उपयोगिता– मेंहदी की पत्तियों के लेप को मुख्यतः नारी अपने श्रृंगार के लिये करती है जो विवाह तथा अन्य धार्मिक संस्कारों एवं पर्वो पर किया जाता है। इसके पुष्पों से सुगन्धित तेल ''हिना अतर'' निकाला जाता है जो परफ्यूम एवं इतर बनाने में प्रयोग किया जाता है। इसका प्रयेग बालों को रंगने (काला करने) में भी बहुत प्रचलित है। इसके अतिरिक्त मेंहदी के पौधे के लगभग सभी भाग औषधि के रूप में प्रयोग किए जा सकते हैं।

औषधीय गुण :

1. इसकी पत्तियों के लेप को किसी भी तरह की जलन पर लगाने से बहुत आराम मिलता है।
2. इसकी पत्तियों का लेप बालों को रंगने के

अतिरिक्त उनमें उत्पन्न रूसी को भी कम करती है।

3. घाव पर इसके लेप का प्रयोग एन्टीबैक्टीरियल औषधि के समान होता है।
4. लगातार उल्टी की स्थिति मं मेंहदी को ताजी पत्तियों को बचाकर उसका रस पीने से आराम मिलता है।
5. मेंहदी की पत्तियों के अतिरिक्त उसके फूल, बीज व छाल में भी अनेकों औषधि गुण विद्यमान है।
6. इसके पुष्प बुद्धिवर्धक, अनिद्रा को दूर करने एवं हृदय गति को सामान्य कर उसे बल प्रदान करते हैं।
7. इसके बीजों को पीस कर उसके रस को पीने से दस्त आना रूक जाता है। ज्वर को भी कम करता है तथा किसी प्रकार के उन्माद एवं बैचैनी में भी राहत मिलती है।
8. इसकी लकड़ी की छाल के रस को पीने से तिल्ली की सूजन कम होती है एवं शरीर में बनी पथरी को भी गला देने की क्षमता इसमें है। घाव पर छाल के लेप लगाने से धाव शीघ्र ही भर जाते हैं।
9. गर्मी के मौसम में होने वाले अनेकों रोग जैसे - सिर दर्द, आंख दर्द, चक्कर आना, मुंह में छाले, नक्सीर फूटने आदि में इसकी पत्तियों का सेवन अत्यन्त गुणकारी एवं लाभदायक होता है।
10. कुष्ठ रोग के इलाज में भी मेंहदी का प्रयोग अत्यन्त महत्वपूर्ण आंका गया है।

खेती कैसे करे :– इसकी खेती मुख्यतः उष्णकटिबंधीय तथा शुष्क-ठंडे स्थानों पर की जाती है। मेंहदी की पैदावार विशेषकर पत्तियों द्वारा रंग निकालने हेतु की जांती है। हमारे देश में मेंहदी के कुल व्यवसायिक उत्पादन का 87% उत्पादन फरीदाबाद (गुइगाँव) बारडोली एवं गाधी (सूरत) में होता है। मेंहदी का पौधा किसी भी प्रकार की मिट्टी विशेष कर चिकनी बलुई मिट्टी में आसानी से तैयार हो जाता है। इसकी पैदावार बीज एवं तने की शाखाओं द्वारा किया जाता है। बीजों को भरे पानी की क्यारियों में बो दिया जाता है जो 20-25 दिनों के पश्चात् अंकुरित हो जाते हैं। जब नवजात पोधा 30-40 से० मी० का हो जाता है तब उसे मार्च व अप्रैल माह में खेतों में लगा दिया जाता है। प्राम्भ में उसे नित्य सिंचाई की अवश्यकता पड़ती है। इसकी विशेषता यह है कि एक बार पौधा तैयार हो जाने पर उससे वर्षो तक फसल ली जाती सकती है। शहरों व गांव में मेंहदी का पौधा लगाने का सबसे सहज उपाय इसकी डाली को काटकर भूमि में लगाना है। जिससे दो से तीन माह में नये पौधे तैयार हो जाते हैं।

अण्डमान और निकोबार की वनस्पति : एक पूर्वावलोकन

श्री पार्थ बासु एवं वसुंधरा पिल्लई
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा

अण्डमान और निकोबार द्वीप-समूह की जैविक विविधता अपने आप में अनोखी है। यह भू-भाग चारों ओर समुद्र से घिरा होने के कारण अलग-थलग पड़ गया है। इसी कारण यह स्थानिय पौधों में धनी है। यहाँ की अनेकों वनस्पतियाँ बर्मा, थाइलैण्ड, मलाया, जावा, सुमात्रा एवं अन्य दक्षिण-पूर्वो एशियाई क्षेत्रों से मिलती जुलती है।

अण्डमान एवं निकोबार द्वीप समूह वनस्पति विविधता की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। उष्ण एवं नम जलवायु एवं क्षेत्रीय विलगाव के कारण यहाँ पाये जाने वाली वाहि-पादपों की दो हजार बीस जातियों में से दस प्रतिशत ऐसी जातियाँ है जो दुनिया में कही नहीं मिलती 60 प्रतिशत ऐसी जातियाँ है जो भारतीय प्रायः द्वीप के अन्य क्षेत्र में नहीं पाई जाती। यहाँ पायी जाने वाली मूल्यवान वनस्पतियों में अनेकों इमारती लकड़ी, औषधियों, साग सब्जी इत्यादि के जीन स्त्रोत हैं। यहाँ की वनस्पतिजात का अभी तक पूरी तरह पता नहीं लगाया जा सका है। अण्डमान एवं निकोबार द्वीप-समूह के मात्र 50 प्रतिशत क्षेत्र में ही अभी तक वानस्पतिक सर्वेक्षण हुए है। पूर्ववर्ती सर्वेक्षण केवल कुछ आबादी वाले स्थानों और जहाँ आसानी से जाया जा सकता था में ही सीमित थे। यहाँ के अधिकांश द्वीपों में आसानी से जाना ही सभंव नहीं था। हाल में किये गये योजनाबद्ध सधन सर्वेक्षण के कारण यहाँ के ऐसे जंगलों की वनस्पतियों के बारे में जानकारी हासिल होने लगी है जहाँ की वन संम्पदा का विस्तारपूर्वक अध्ययन एवं प्रकाशन अब नितान्त आवश्यकहै। साथ ही साथ यहाँ पाये जाने वाली दुर्लभ एवं महत्वपूर्ण वनस्पतियों की उपयोगिता एवं उनके सरंक्षण के समुचित उपायों का आकलन भी नितान्त आवश्यक है।

यहाँ पाई जाने वाली दो सौ बीस स्थानिक जातियों में से 60 जातियाँ ऐसी है जिनका संग्रह उन्नीसवी सदी में ब्रिटिश वनस्पतिज्ञों द्वारा किया गया था किन्तु बीसवी सदी में किसी भी वनस्पतिज्ञ द्वारा उनका संग्रह नहीं किया जा सका है जिससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ये 60 जातियाँ या तो लुप्त हो गई है या लुप्त होने की स्थिति में पहुँच गई है और बहुत ही कम संख्या में बिरले स्थानों परही रह गई है। ऐसा भी हो सकता है कि उन क्षेत्रों में जहाँ ये पाई जाती है, अबतक कोई गया ही न हो। परन्तु ऐसी संभावना बहुत ही कम है। जो भी हो, स्थानिक जातियाँ जहाँ-जहाँ भी है, उन सभी क्षेत्रों के महत्व को ध्यान में रखते हुये उनका सरंक्षण परम आवश्यक है।

अण्डमान एवं निकोबार द्वीप समूहों का क्षेत्र फल लगभग 8300 वर्ग कि.मी. है। द्वीप की भौगोलिक स्थिति के फलस्वरूप यहाँ के

विभिन्न सदाबहार वन अकसर समुद्र तटीय वनों के साथ मिले जुले रूप में देखे जाते है हालांकि इनमें शुद्ध पर्णपाती वन लगभग नहीं के बराबर है। यह द्वीप समूह आर्थिक एवं लाभदायक पौधों के मूल अनुवांशिक स्रोतों का एक ऐसा विशाल संग्रहालय है जो कि अनुसंधान के पश्चात् भविष्य में उपयोग हेतु एक खजाने की तरह होगा। यद्यापि अण्डमान एवं निकोबार में अनेक औषधीय तथा उपयोगी पौधे मिलते है फिर भी उपयोगिता की दृष्टि से सभी का आकलन नहीं हुआ है। दूसरी ओर बढ़ती जनसरथा के कृषि, आवास आदि हेतु जैसे अनेक जैविंक दवाब यहाँ के जंगलो पर पड़ रहे हैं। जो इन वनों के लिये घातक है। यदि इन दवाबो से यहाँ के जंगलों की रक्षा नहीं की गई तो यहाँ पाई जाने वाली विरल वनस्पतियों का अस्तित्व खतरे में पड़ जाएगा जो पर्यावरण और मानव जाति के हित में नही होगा।

विगत का शोक नहीं करना चाहिए। बुद्धिमान व्यक्ति भविष्य का चिन्तन करता हुआ वर्तमान काल के अनुसार आचरण करता है।

– ''चाणक्य''

दैनन्दिन में पर्यावरण संरक्षण की भावना

नवीन चौधरी
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कलकत्ता

पृथ्वी पर जितने जीव-जन्तु हैं वे पर्यावरण के अंग हैं। इनमें से हरेक पर्यावरण की वृहत श्रृंखला की एक कड़ी है। विचारणीय प्रश्न है कि एक जीव पर्यावरण को क्या देता है और पर्यावरण से क्या लेता है। इस दृष्टि से मानव पर्यावरण की श्रृंखला की सबसे महत्वपूर्ण कड़ी है। पर्यावरण से मानव जितना लेता है उसकी तुलना में पर्यावरण को कदाचित कुछ नहीं देता है। इस विडम्बना का आरंभ उसी दिन हुआ जिस दिन सभ्यता का सूत्रपात हुआ। असभ्यता के पहले चरण में मानव आग की उपयोगिता से परिचित हुआ। सभ्यता के दूसरे चरण में मानव ने चक्र (चक्का) अर्थात् पहिये का आविष्कार किया।

सभ्यता संस्कृति को निचोड़ कर मानव ने एक मंत्र अपने सामने रख लिया। कम से कम समय में कम से कम ऊर्जा (श्रम) लगाकर अधिक से अधिक कार्य (उत्पाद) प्राप्त करना। इस मंत्र का सीधा सम्पर्क मानव के स्वार्थ से है। कोई आश्चर्य नहीं कि अपने स्वार्थ के लिए मानव पर्यावरण दोहन करता रहा, उसे पैरों तले रौंदता रहा।

प्राचीन काल में पर्यावरण का दोहन होता था परन्तु मानव की दैनान्दिन चेतना या दिनचर्या में पर्यावरण संरक्षण की भावना निहित थी। प्राचीन काल की दिनचर्या के विस्मृत अवशेष की इन बातों पर गौर करने से उनकी भावना का चित्र सामने आता है। जो करना अनिवार्य था वह करते थे पर नम्रतापूर्वक। उच्छृलता की गन्ध नहीं।

दन्तधावन (दतुअन) के लिए वृक्ष की दहनी चाहिए। टहनी तोड़ने से वृक्ष की क्षति होगी। इसलिए वृक्ष की प्रार्थना : ''आयुबलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनिच ब्रह्म प्रज्ञां च मेधां च त्वन्नो देहि वनस्पति।''

मिट्टी के लिए उनके मन में जो अपार श्रद्धा थी उसका संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है ''अश्वक्रान्ते! रथक्रान्ते! विष्णुकान्ते! वसुन्धरे! मृत्तिके हर में पापं यन्मनया दुष्कृतं कृतम्।।''

किसी न किसी कारण से कई बार पानी का उपयोग करते थे। पानी का उपयोग होगा तो पानी गन्दा होगा। पानी गन्दा करना अनिवार्य है, फिर भी अपराध है। अपराध की भावना दिल से निकल कर होठों पर आईः

''यन्मया दूषितं तोयं मलैः शारीरसंभवैः
तस्य पापस्य शुद्ध्यर्थं यज्ञमाणंतर्पयाम्यहम्''

वनस्पति को परिवार के सदस्यों की कोटि में रखकर वे कहते थे ---

''लतागुल्मेषु वृक्षेषु पितरो ये व्यवस्थिताः
ते सर्वे तृप्तियामान्तु मयोत्सृष्टैः शिखोदकैः''

पानी गन्दा हो रहा है। बहुत अनर्थ हो रहा है। पाप हो रहा है। पाप का प्रायश्चित होगाः

''यन्मया दूषितं तोयं शरीर मल सम्भवम्

तस्य पापस्य शुद्धयर्थ यक्ष्मैतत्ते तिलोदकम्''

देव कर्म और पितृ कर्म में सर्वदा कुश अनिवार्य है। घरती से कुश उखाड़ना है। कुश उखाड़ने से पहले कुश और धरती की प्रार्थनाः

''विरंचिना सहोत्पन्न परमेषिठनिसर्गज।
नुद सर्वाणि पापानि दर्म स्वास्तिकरो भव।।
''कुशोडसि कुशपुत्रोडसि ब्रह्मणा निर्मिता पुरा।
देव पितृ हितार्थाय कुशमुत्पाट्याम्यहम्।।''

पृथ्वी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन

''ऊँ पृथ्वि! त्वया घृता लोका देवि एवं विष्णुना घृता एवं च धारय मां देवि! पवित्रं कुरू चासनम्''

जाने-अनजाने होने वाले असंख्य अपराध के बारे में सोचकर वे व्यथित होते ''यत्किंचिद् दुरितं मयि उदमहमापोडमृतयोनौ .....

पर्यावरण चिन्तन ने उनके मन प्राण में श्रद्धा का आसन पाया था। गायत्री की उपासना के क्रम में गायत्री के स्वरूप की कल्पना हुई। अंग प्रत्यंग की कल्पना हुई.....

''पादौ पृथ्वी। वनस्पतयोंडगुलीषु ..... देवताओं पितरों के तर्पण के समय भी पर्यावरण को नहीं भूलते थे.....

सागरास्तृप्यन्ताम् - पर्वतास्तृप्यन्ताम

सरितस्तृप्यन्ताम्.....

ॐ मधुमन्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः ...

तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजन्तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः .....अन्तरिक्ष शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्ति वनस्पतयः शान्ति..... देवताओं की पूजा-अर्चना के समय भी वे पर्यावरण संरक्षण की भावना का आदर करते थे ''पयः पृथिव्याम्पयऽओषधीषु पयोदिव्यन्तरिक्षे पयोधाः।। पूजा-अर्चना के लिए निर्धारित सामग्री में वनस्पति का महत्व अद्वितीय है। उनमें कुछ इस प्रकार हैः

सप्त धान्य : यवगोधूमधान्यानि तिलाः कंगु तथैव च। श्यामकाश्चनकाश्चैव.....

सप्तमृद : अश्वस्थानाद्गजस्थानाद्वाल्मीका त्संगमाद्धदात् राजद्वाराच्च गोष्ठाच्च.....

सर्वोषधय : मुरा मांसी वचा कुष्ठं शैलेयं रजनी द्वयम्। सुंठी चम्पकमुस्ता च सर्वोषधि....

पंचपल्लव : न्यग्रोधोऽदुम्बरोऽश्वत्थः चूतः प्लक्षस्तथैव च.....

पर्यावरण संरक्षण की भावना हमारे दैनान्दिन जीवन में, हमारी दिन चर्या में निहित होनी चाहिए। सम्मेलन, संगोष्ठी, परिसंवाद, कार्यशाला आयोजित करने, पत्र-पत्रिकाओं में निबंध-कविता लिखने से, आकाशवाणी-दूरदर्शन के विभिन्न कार्यक्रम से कुछ जागरूकता आने लगी है। लेकिन दिन प्रतिदिन बढ रहे प्रदूषण के सामने यह जागरूकता असहाय है।

प्राचीन काल की दिनचर्या वापस नहीं लाई जा सकती। यह संभव है कि उस दिनचर्या में जो अच्छा था उसे आत्मसात् करने की कोशिश करें। क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर को उपभोग की वस्तु मान लेने में हर्ज नहीं है। हम आदर और श्रद्धा के साथ उनका उपभोग करें।

यह पर्यावरण हमारा हो

भोलानाथ,
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पोर्ट ब्लेयर

यदि पर्यावरण में हरित क्रान्ति ही, एक हमारा नारा हो।
तब प्रदूषण से मुक्त रहे, यह पर्यावरण हमारा हो।।
प्रदूषण बन कठिन समस्या, नभ-जल-थल में छाया है।
वायु - मृदा - जल दूषित है, - जग जीवन अति घबराया है।।
सही विकल्प तलाश करें यदि, कल्याण जगत का सारा हो।।
तब - हो।।

वायु-प्रदूषण बढ़ा अनिश्चित, कर्ता कौन कौन है कारण।
इससे सृष्टि विनाश सुनिश्चित, एक-एक का करें निवारण।।
प्राण-वायु जब स्वच्छ रहेगी, दीर्घायु जीव तब सारा हो।
तब - हो।।

जब तक दूषित बना रहेगा, वसुन्धरा पर जल - भण्डार।
विविध माँति के रोग बढ़ेगे, पीड़ित होगा सारा संसार।।
जलाशय के हर स्रोतों का, उपचार किया - दोबारा हो।
तब - हो।।

दूषित जल को स्वच्छ बनाकर, जग - जीवन की जान बचायें।
जल ही जीवन है धरती पर, जीने का अधिकार बनाये।।
स्वच्छता अभियान चले हरदम, जन हित का जहां इशारा हो।
तब - हो।।

धरती का कण-कण बोल रहा है, मृदा प्रदूषण को पहचाने।
कौन प्रदूषण घोल रहा है, वैज्ञानिक - तथ्यों को जाने।।
कृषि में उपयोग रसायन का, यदि बिल्कुल नहीं दोबारा हो।
तब - हो।।

वृक्षारोपण पर बल दीजै, धरती पर बढ़ेगी हरियाली।
धुआं - गैस पहले कम कीजै, जीवों को मिलेगी खुशहाली।।
हर मौसम के फल - फूल मिलेंगे, हर मौसम, प्यारा प्यारा हो।
तब - हो।।

वृक्षों - पौधों पर वर्षा निर्भर, यह वातावरण भी नम होगा।
परहेज और उपचार से ही, यों बढ़ा प्रदूषण, कम होगा।।
''वानिकी योजना'' सम्भव है, जब आपस में भाई - चारा हो।
तब - हो।।

अपने पथ की बाधाओं से मत डरो। उसकी कोई बात नहीं कि जो शक्तियाँ तुम्हारे मार्ग में आड़े आती हैं वे कितनी महान हैं ..... जब कि सब तरफ चमत्कार घटित हो रहे हैं किसी भी वस्तु को असम्भव मत मानो। यदि तुम सच्चे हो तो फिर किसी से डरने की आवश्यकता नहीं है।

– ''योगिराज अरविन्द''

सं० ई० 11011/17/96 रा० भा०

भारत सरकार

पर्यावरण एवं वन मंत्रालय

पर्यावरण भवन,
सी जी ओ काम्पलैक्स,
लोदी रोड, नई दिल्ली

विषय : राजभाषा स्वर्ण जयन्ती वर्ष में आयोजित किए जाने वाले कार्यक्रमों की रूपरेखा।

14 सितम्बर, 1949 को संविधान सभा ने हिंदी को संघ की राजभाषा के रूप में स्वीकार किया था। तदनुसार भारत के संविधान के अनुंच्छेद 343 में ये उपबंध किया गया कि हिंदी संघ की राजभाषा होगी। इस ऐतिहासिक दिन के 50 वर्ष 14 सितम्बर, 1999 को पूरे हो रहे हैं।

राजभाषा स्वर्ण जयन्ती वर्ष में मंत्रालय के सभी अधीनस्थ कार्यालयों से अनुरोध है कि वे कृपया अपने कार्यालयों में कुछ ऐसे प्रयास करें जिससे सरकारी कामकाज में हिंदी के प्रयोग में आवश्यक सुधार हो तथा राजभाषा विभाग द्वारा जारी 1999-2000 के वार्षिक कार्यक्रम में उल्लिखित मदों का पूरी तरह से पालन हो सके। संसदीय राजभाषा समिति द्वारा राष्ट्रपतिजी को प्रस्तुत पांचों खंडों में की गई महत्वपूर्ण सिफारिशों को पूरी तरह से लागू किया जाना है। यदि कार्यालयों में हिंदी शिक्षण, हिंदी टाइपिंग, हिंदी आशुलिपि प्रशिक्षण अभी बकाया है तो इस कार्य को भी शीघ्रता से पूरा कराया जाना है।

पर्यावरण एवं वन मंत्रालय में सचिव महोदय के अनुमोदन से राजभाषा स्वर्ण जयन्ती वर्ष में आयोजित किए जाने वाले कार्यक्रमों को तैयार कर लिया गया है (प्रतिलिपि संलग्न) इन्हें भी पूरी तरह से कार्यान्वित करें व इसमें निन्मलिखित मदों के संबंध में भी आवश्यक समावेश करें :-

1. केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों में रोजाना का सरकारी कामकाज मूल रूप से हिंदी में किया जाए।
2. कार्यक्रमों के माध्यम से हिंदी को राष्ट्रीय एकता के सशक्त माध्यम के रूप में पेश किया जाए इससे अंततः प्रशासन तथा जनता के बीच निकटता बढ़ेगी।
3. राजभाषा हिंदी के प्रयोग के लिए राजभाषा विभाग द्वारा निर्धारित वार्षिक लक्ष्य प्राप्त किए जाएं।

4. उपरोक्त के अतिरिक्त राजभाषा संबंधी प्रतियोगिताओं, कार्यशालाओं आदि का आयोजन भी किया जाए जो कि राजभाषा हिंदी के प्रसार में सहायक हो।

उक्त के संबंध में जो भी कार्रवाई की जाए या राजभाषा स्वर्ण जयन्ती वर्ष में जो कार्यक्रम आयोजित करने के संबंध में निर्णय लिए जाएं उससे अधोहस्ताक्षरी को भी अवगत कराएं।

23.6.99

(बलदेव राज)

निदेशक (रा0भा0)

पर्यावरण एवं वन मंत्रालय व इसके सम्बद्ध एवं अधीनस्य कार्यालयों में राजभाषा स्वर्ण जयन्ती वर्ष में आयोजित किए जाने वाले कार्यक्रमों का कलैण्डर।

14 सितम्बर से नवम्बर, 1999

माननीय पर्यावरण एवं वन मंत्री जी की ओर से मंत्रालय व इसके सम्बद्र/अधीनस्थ कार्यालयों में कार्यरत अधिकारियों व कर्मचारियों के लिए संदेश भिजवाना।

2. अखिल भारतीय स्तर की निबंध प्रतियोगिता का आयोजन - निबंध के विषय 20 सितम्बर, 1999 को परिचालित कर दिए जाएंगे और इनको मंत्रालय में भेजने की अंतिम तिथि 20 अक्तूबर, 1999 होगी।
3. मंत्रालय व इसके सम्बद्र एवं अधीनस्थ कार्यालयों में निम्नलिखित हिंदी की प्रतियोगिताएं आयोजित की जाएंगी :-
   (क) नोटिंग/ड्राफ्टिंग प्रतियोगिता
   (ख) क्विज प्रतियोगिता
   (ग) हिंदी की मानक वर्तनी प्रतियोगिता
   (घ) हिंदी टाइपिंग प्रतियोगिता
   (ङ) हिंदी आशुलिपि प्रतियोगिता

दिसम्बर, 1999 व फरवरी, 2000

1. ''पर्यावरण'' पत्रिका का राजभाषा स्वर्ण जयन्ती विशेषांक निकालना।
2. विभागीय प्रतियोगिता व अखिल भारतीय निबंध प्रतियोगिता का परिणाम घोषित करना।
3. मंत्रालय में एक दिवसीय हिंदी कार्यशाला का आयोजन।
4. पर्यावरण, वन एवं वन्य जीवन पर हिंदी में बनी फिल्मों का मंत्रालय के अधिकारियों व कर्मचारियों के लिए प्रदर्शन।

मार्च से मई, 2000

1. मंत्रालय में आयोजित विभिन्न प्रतियोगिताओं का पुरस्कार वितरण समारोह का आयोजन। इसमें मंत्रीजी/सचिव महोदय द्वारा अधिकारियों/कर्मचारियों को पुरस्कार दिए जाएंगे।
2. मंत्रालय के सभी अधीनस्थ कार्यालयों में पर्यावरण, वन और वन्य जीवन पर बनी हिंदी फिल्मों का प्रदर्शन।
3. **निम्नलिखित कार्यालयों में 3 दिवसीय हिंदी कार्यशालाओं का आयोजन**
   1. राष्ट्रीय प्राणी उद्यान, मथुरा रोड, नई दिल्ली
   2. राष्ट्रीय प्राकृतिक विज्ञान संग्रहालय, नई दिल्ली
   3. वन संरक्षक (के), केन्द्रीय क्षेत्रीय कार्यालय, चंडीगढ़
   4. मुख्य वन संरक्षक (के), केन्द्रीय क्षेत्रीय कार्यालय, भुवनेश्वर
   5. भारतीय प्राणी सर्वेक्षण, कलकत्ता
   6. इंदिरा गांधी राष्ट्रीय वन अकादमी, देहरादून
   7. मुख्य वन संरक्षक (के), केन्द्रीय क्षेत्रीय कार्यालय, शिलांग
   8. मुख्य वन संरक्षक (के), केन्द्रीय क्षेत्रीय कार्यालय, अलीगढ़, लखनऊ

जून से 13 सितम्बर, 2000 तक

निम्नलिखित कार्यालयों में हिंदी कार्यशालाओं का आयोजन :-

1. भारतीय वन सर्वेक्षण, देहरूदन
2. **भारतीय वनस्पति, सर्वेक्षण कलकत्ता**
3. वन शिक्षा निदेशालय, देहारादून
4. मुख्य वन संरक्षक (के०), केन्द्रीय क्षेत्रीय कार्यालय, बंगलौर
5. मुख्य वन संरक्षक (के०), केन्द्रीय क्षेत्रीय कार्यालय, भोपाल
6. केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड, दिल्ली
7. भारतीय वन्य जीवन संस्थान, देहारादून
8. भारतीय वन प्रबंधन संस्थान, भोपाल
9. गोविन्द बल्लभ पंत हिमालयन पर्यावरण एवं विकास संस्थान, अल्मोड़ा
10. भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद, देहरादून
11. भारतीय प्लाईवुड उद्योग अनुसंधान संस्थान, बंगलौर
12. अंडमान व निकोबार द्वीप समूह वन एवं वृक्षारोपण विकास निगम लि०, पोर्ट ब्लेयर।

राजभाषा विभाग द्वारा जारी 1999-2000 के वार्षिक कार्यक्रम की मुख्य-मुख्य बातें।

1. ''क''- क्षेत्र में स्थित केन्द्रीय सरकार के मंत्रालयों/विभागों/कार्यालयों आदि में कार्यरत वे अधिकारी/कर्मचारी जो हिंदी में प्रवीण हैं या जिन्हें हिंदी का कार्यसाधक ज्ञान है वे अपनी फाइलों में 50 प्रतिशत नोटिंग हिंदी में करेंगे। ''ख'' क्षेत्र में स्थित कार्यालयों के लिए ये लक्ष्य 35 प्रतिशत का है जबकि ''ग'' क्षेत्र में स्थित कार्यालयों के लिए ये लक्ष्य 20 प्रतिशत का है।
2. ''क'' क्षेत्र में स्थित केन्द्रीय सरकार के मंत्रालयों/विभागों/कार्यालयों को ''क''- और ''ख'' क्षेत्रो में स्थित केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों या राज्य करकारों/संघ राज्य क्षेत्रों की सरकारों से समूचा पत्राचार हिंदी में किया जाना है। ''ख'' खेत्रों में स्थित कार्यालयों के लिए ये लक्ष्य 90 प्रतिशत तथा ''ग'' क्षेत्र में स्थित कार्यालयों के लिए ये लक्ष्य 55 प्रतिशत का है।
3. ''क'' क्षेत्र में स्थित कार्यालयों के लिए देवनागरी टाइप उपकरण, हिंदी टंकक और हिंदी आशुलिपिकों का अनुपात 90 प्रतिशत होना चाहिए। ''ख'' क्षेत्र में इनका लक्ष्य 75 प्रतिशत तथा ''ग'' क्षेत्र में इनका लक्ष्य 35 प्रतिशत होना चाहिए।
4. धारा 3(3) के अंतर्गत आने वाले सभी दस्तावोज अर्थात् सामान्य आदेश, कार्यालय ज्ञापन, अधिसूचनाएं, करार, निविदा आमंत्रण सूचनाएं, संकल्प आदि अनिवार्य रूप से दोनों भाषाओं में जारी किए जाएं।
5. हिंदी में प्राप्त सभी पत्रों का उत्तर अनिवार्य रूप से हिंदी में ही दिया जाना है।
6. प्रत्येक मंत्रालय/विभाग के अधिकारी अपने संबधित कार्यालयों का हिंदी के प्रगामी प्रयोग से संबंधित निरीक्षण करेंगे। वर्ष के दौरान दिल्ली से बाहर स्थित कार्यालयों में कम से कम 10 कार्यालयों का निरीक्षण अपेक्षित है।
7. मंत्रालय द्वारा ''क'' और ''ख'' क्षेत्रों को भेजे जाने वाले पत्रों के लिफाफों पर पते देवनागरी में लिखे जाएं।
8. मंत्रालय में सभी नामपट्ट, रबड़ की मुहरें, पत्र शीर्ष और साइन बोर्ड आदि द्विभाषी रूप में ही बनाए जाएं।
9. ''क''- तथा ''ख'' क्षेत्रों में स्थित केन्द्र सरकार के सभी कार्यालयों में रखे जाने वाले रजिस्टरों/सेवा पुस्तिकाओं में प्रविष्टियां हिंदी में ही की जाएं।
10. मंत्रालय में कम से कम 4 हिंदी कार्यालाएं आयोजित की जाए जिससे हिंदी में सरकारी कामकाज करने के संबंध में अधिकारयिों/कर्मचारियों की झिझक को यथासंभव दूर किया जा सके।
11. मंत्रालय में कम से कम 7 अनुभागों (हिंदी अनुभाग को छोड़कर) को हिंदी में काम करने वाले अनुभागों के रूप में घोषित किया जाए।

कल्प वृक्ष : भारतीय वनस्पति उद्यान, चित्र : एडेन्सोनिया डिजिटाटा का एक शिशु-वृक्ष (चित्र : आर० सी० श्रीवास्तव)

गोमुख : गंगा का उद्गम स्थल (सौजन्य : हर्ष चौधरी)

पुष्प की अभिलाषा

चाह नहीं मैं सुरबाला के गहनों में गूंथा जाऊँ।
चाह नहीं, प्रेमी-माला में बिंध प्यारी को ललचाऊं।
चाह नहीं सम्राटों के शव पर हे हरि, डाला जाऊं।
चाह नहीं, देवों के सिर पर चढ़ूँ भाग्य पर इठलाऊं।
मुझे तोड़ लेना, वनमाली उस पथ पर देना तुम फेक
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ जाएं वीर अनेक।

माखनलाल चतुर्वेदी

निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पी-8, ब्रेबोर्न रोड, कलकत्ता-700 001, द्वारा प्रकाशित एवं
लेसर कम्प्युटर एंड को०, 4, बी. बी. डी. बाग, कलकत्ता-700 001, फोन - 248 7881 द्वारा मुद्रित